वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६३ अंक ७ जुलाई २०२५

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६ ३

अंक ७

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक

स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक

स्वामी पद्माक्षानन्द

आषाढ़, सम्वत् २०८२

जुलाई, २०२५

अनुक्रमणिका

* समभाव का विकास करना ही मेरे कहे हुए धर्म का आदर्श है : विवेकानन्द २९४
* गुरु और शिष्य (स्वामी अलोकानन्द) २९६
* जप और ध्यान (स्वामी ब्रह्मेशानन्द) ३००
* (बच्चों का आंगन) रानी गुंडिचा का अलौकिक प्रेम (श्रीमती मिताली सिंह) ३०७
* भारतीय संस्कृति में गुरु-परम्परा (डॉ. जया सिंह) ३०८
* (युवा प्रांगण) राष्ट्रीय विकास के अग्रदूत (स्वामी गुणदानन्द) ३१२
* शिव-प्रिय श्रावण (स्वामी ईशानन्द) ३१४
* कारगिल के वीरों का पुण्य स्मरण (नम्रता वर्मा) ३१८
* शिष्य के दिव्य स्वरूप के प्रकाशक हैं गुरुदेव (स्वामी ओजोमयानन्द) ३२०
* स्वामी ब्रह्मानन्द और भुवनेश्वर (स्वामी तन्निष्ठानन्द) ३२३
* आध्यात्मिक प्रगति हो रही हैं कि नहीं कैसे समझें (स्वामी सत्यरूपानन्द) ३२७
* गुरु महिमा अपरम्पार (स्वामी सत्कृतानन्द) ३२८
* (भजन एवं कविता)
* श्रीरामकृष्ण-स्तुति-३ (रामकुमार गौड़) ३१०
* निष्काम कृपा के सागर गुरुदेव (चन्द्रमोहन) ३११
* हे रामकृष्ण अवतार हरे! (डॉ. अनिल कुमार, फतेहपुरी) ३११
* जगत्‌गुरु जय रामकृष्ण प्रभु (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ३१६

श्रृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) २९३
पुरखों की थाती २९३
सम्पादकीय २९५
रामगीता ३०४
प्रश्नोपनिषद् ३१७
श्रीरामकृष्ण-गीता ३१९
गीतातत्त्व-चिन्तन ३३०
साधुओं के पावन प्रसंग ३३२
समाचार और सूचनाएँ ३३४

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)

ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***

आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २५/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	६०यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	३००/-	१५००/-	

भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित चित्र अन्तरंग शिष्यों के साथ जगत् गुरु श्रीरामकृष्ण देव का है।

जुलाई माह के जयन्ती और त्यौहार

१०	गुरु पूर्णिमा
२२	स्वामी रामकृष्णानन्द
६,२१	एकादशी

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ६२ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	१२,२००/-

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम

कनखल, हरिद्वार, उत्तराखंड - 249408

फोन : 01334-244020, मो. 94109-75929

ई-मेल : rkmkankahal@gmail.com
वेबसाइट : https://kankhal.rkmm.org

आपसे सहयोग हेतु निवेदन

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, कनखल, हरिद्वार पिछले सौ वर्षों से समाज की सेवा कर रहा है, जिसने स्वास्थ्य सेवा, सामाजिक कल्याण और आध्यात्मिक उत्थान के क्षेत्रों में गहरा प्रभाव डाला है। यह आश्रम स्वामी विवेकानन्द से प्रेरित होकर 190 बिस्तरों वाला एक बहु-विशिष्ट धर्मार्थ चिकित्सालय संचालित करता है । इस चिकित्सालय में साधुओं, विद्यार्थियों और गरीबों की उच्च गुणवत्ता वाली चिकित्सा-सेवा 'मानव की सेवा ईश्वर की सेवा है' इस भाव से निःशुल्क एवं रियायती दरों पर की जाती है ।

भविष्य की योजना - नर्सिंग कॉलेज और बालिकाओं के लिए छात्रावास

गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करने की अपनी प्रतिबद्धता के अन्तर्गत रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम ने नर्सिंग कॉलेज की स्थापना की आवश्यकता का अनुभव किया, जिससे कुशल नर्सों की बढ़ती माँग को पूरा किया जा सके । इस परियोजना के अन्तर्गत **बी.एससी. नर्सिंग कॉलेज और जीएनएम प्रशिक्षण संस्थान** का निर्माण किया जाएगा, जो हरिद्वार के कनखल में बालिकाओं के लिए **विश्वस्तरीय प्रशिक्षण सुविधाएँ** प्रदान करेगा। इसके साथ ही **100 छात्राओं** के लिए एक छात्रावास भी बनाया जाएगा।

अनुमानित परियोजना की लागत : रु. 16 करोड़

इस पावन परियोजना को पूर्णतः साकार करने के लिये हम आपके उदार सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

बैंक विवरण (केवल भारतीय दाताओं के लिये) :
नाम : रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम
खाता संख्या : 50100707852620
बैंक : एचडीएफसी बैंक, जगतीपुर, हरिद्वार - 249408
IFSC कोड : HDFC0005496

* विदेशी दानदाताओं से अनुरोध है कि वे rkmkankahal@gmail.com इस आइडी पर ईमेल करें, ताकि हम उनसे बैंक विवरण साझा कर सकें ।
* दान आयकर अधिनियम की धारा **80 (G)** के अन्तर्गत कर-मुक्त है ।
* दान करने के बाद, कृपया हमें निम्नलिखित विवरण के साथ ई-मेल करें – आपका नाम, पता, पैन नम्बर, दान की राशि और ट्रांसफर की तिथि ।
* कृपया यह भी उल्लेख करें कि दान 'नर्सिंग कॉलेज और छात्रावास' के लिये दिया गया है ।

आपका आज का सहयोग भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्रेरणा बनेगा ।

आपकी सेवा में
(स्वामी दयामूर्त्यानन्द)
सचिव

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !
आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।
इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी
भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!
Sudarshan Saur
सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए
सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए
सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए
घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त
समझदारी की सोच!
३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!
आजीवन सेवा
लाखां संतुष्ट ग्राहक
विस्तृत डीलर नेटवर्क
Sudarshan Saur®
www.sudarshansaur.com
Toll Free
1800 233 4545
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६३ जुलाई २०२५ अंक ७

श्रीगुरु-स्तोत्र

विश्वं पश्यति कार्य-कारणतया
स्व-स्वामि-सम्बन्धतः ।
शिष्याचार्यतया तथैव पितृ-
पुत्राद्यात्मना भेदतः ।
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो
मायापरिभ्रामित-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं
श्रीदक्षिणामूर्तये ।।

– जो माया द्वारा संचालित पुरुष के रूप में स्वप्न अथवा जाग्रत अवस्था में विश्व को कार्य तथा कारण के रूप में प्रभु तथा उसकी सम्पत्ति के रूप में, शिष्य तथा आचार्य के रूप में, विशेषतः पिता तथा पुत्र के रूप में पृथक्-पृथक् भाव में दर्शन करते हैं, उन गुरु का रूप धारण करनेवाले श्रीदक्षिणामूर्ति को नमस्कार।

पुरखों की थाती

हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढम् आविशन्ति न पंडितम् ।।८७२।।

– मायामुग्ध मनुष्य अपने दैनन्दिन जीवन में सैकड़ों कारणों से खुश और हजारों कारणों से दुखी या भयभीत होता रहता है, परन्तु ज्ञानी लोग ऐसी परिस्थितियों में विचलित नहीं होते।

हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागतात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टतम् ।।८७३।।
(महाभारत)

– हे वत्स, निकृष्ट लोगों की संगति से अपनी बुद्धि भी निकृष्ट हो जाती है, अपने ही समान लोगों की संगति से बुद्धि यथावत् बनी रहती है और विशिष्ट लोगों की संगति से बुद्धि उत्कृष्ट हो जाती है।

नित्योत्सवो भवेत्तेषां नित्यश्रीर्नित्यमंगलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः।।८७४।।

– जिन लोगों के हृदय में भगवान विष्णु विराज करते हैं, उनके जीवन में नित्य उत्सव होता है और नित्य समृद्धि रहती है, क्योंकि श्रीहरि समस्त मंगलों के आगार हैं।

समभाव से विकास करना ही मेरे कहे हुए धर्म का आदर्श है : विवेकानन्द

सभी धर्मभावों की पृष्ठभूमि केवल त्याग ही है और तुम यह सदैव देखोगे कि जैसे-जैसे त्याग का भाव क्षीण होता जाता है, वैसे-वैसे धर्म के क्षेत्र में इन्द्रियों का प्रभाव बढ़ता जाता है और उसी परिमाण में आध्यात्मिकता का ह्रास होता जाता है। (७/२६४)

हिन्दू भावों को अंग्रेजी में व्यक्त करना, फिर शुष्क दर्शन, पेचीदी पौराणिक कथाएँ और अनूठे आश्चर्यजनक मनोविज्ञान से एक ऐसे धर्म का निर्माण करना जो सरल, सहज और लोकप्रिय हो और उसके साथ ही उन्नत मस्तिष्कवालों को सन्तुष्ट कर सके – इस कार्य की कठिनाइयों को वे ही समझ सकते हैं, जिन्होंने इसके लिए प्रयत्न किया हो। अद्वैत के गूढ़ सिद्धान्तों में नित्य प्रति के जीवन के लिए कविता का रस और जीवनदायिनी शक्ति उत्पन्न करनी है, अत्यन्त उलझी हुई पौराणिक कथाओं में से साकार नीति के नियम निकालने हैं और बुद्धि को भ्रम में डालने वाली योग-विद्या से अत्यन्त वैज्ञानिक और क्रियात्मक मनोविज्ञान का विकास करना है और इन सबको एक ऐसे रूप में लाना पड़ेगा कि बच्चा-बच्चा इसे समझ सके। मेरे जीवन का यही कार्य है। (४/३८६)

मैं एक ऐसे धर्म का प्रचार करना चाहता हूँ, जो सब प्रकार की मानसिक अवस्थावाले लोगों के लिए उपयोगी हो, इसमें ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म समभाव से रहेंगे। यदि कॉलेज से वैज्ञानिक और भौतिकशास्त्र के अध्यापक आयें, तो वे युक्ति-तर्क पसन्द करेंगे। उनको जहाँ तक सम्भव हो, युक्ति-तर्क करने दो।

इसी तरह यदि कोई योगप्रिय व्यक्ति आयें, तो हम उनकी आदर के साथ अभ्यर्थना करके वैज्ञानिक भाव से मनस्तत्त्व-विश्लेषण कर देने और उनकी आँखों के सामने उसका प्रयोग दिखाने को प्रस्तुत रहेंगे। यदि भक्त लोग आयें, तो हम उनके साथ एकत्र बैठकर भगवान के नाम पर हँसेंगे और रोयेंगे, प्रेम का प्याला पीकर उन्मत्त हो जायेंगे। यदि एक पुरुषार्थी कर्मी आये, तो उसके साथ यथासाध्य काम करेंगे। भक्ति, योग, ज्ञान और कर्म के इस प्रकार का समन्वय सार्वभौमिक धर्म का अत्यन्त निकटतम आदर्श होगा। भगवान की इच्छा से यदि सब लोगों के मन में इस ज्ञान, योग, भक्ति और कर्म का प्रत्येक भाव ही पूर्ण मात्रा में और साथ ही समभाव से विद्यमान रहे, तो मेरे मत से मानव का सर्वश्रेष्ठ आदर्श यही होगा। जिसके चरित्र में इन भावों में से एक या दो प्रस्फुटित हुए हैं, मैं उनको एकपक्षीय कहता हूँ और सारा संसार ऐसे ही लोगों से भरा हुआ है, जो केवल अपना ही रास्ता जानते हैं। इसके सिवाय अन्य जो कुछ हैं, वह सब उनके निकट विपत्तिकर और भयंकर हैं। इस तरह चारों ओर समभाव से विकास करना ही 'मेरे' कहे हुए धर्म का आदर्श है। (३/१५०-५१)

यदि कभी कोई सार्वभौमिक धर्म होना है, तो वह किसी देश या काल में सीमाबद्ध नहीं होगा, वह उस असीम ईश्वर के सदृश ही असीम होगा।

सम्पादकीय

मोहि माया बहुत सतायो, हे गुरु शरण में आयो

एक आचार्यजी अपने आसन पर बैठे हुये थे। उनके चारों ओर शिष्य-मण्डली उनकी वाणी सुनने के लिये समुत्सुक थी। सभी चातक के सदृश अपनी दृष्टि गुरुदेव के श्रीमुख की ओर किये हुये उनकी अमृतमयी वाणी सुनने की आतुर प्रतीक्षा कर रहे थे। आचार्य बड़ी गम्भीर मुद्रा में विराजमान थे। सभी शिष्य अपने को परम भाग्यशाली अनुभव कर रहे थे। क्योंकि आज उन्हें अपने गुरुदेव का पुण्य दर्शन का सुअवसर मिला है। आज गुरुदेव के पावन चरणों का स्पर्शन मिला है। अब गुरुदेव की अमृतमयी वाणी के श्रवण करने का सौभाग्य मिलेगा, जिनकी वाणी शिष्य को भव-सागर से पार लगा देती है, जिनकी वाणी कलिदोष से मुक्ति दिलाती है, जिनकी वाणी बहिरंग और अन्तरंग शत्रुओं का दमन करती है, जिनकी वाणी माया-पाश से मुक्त करती है। आज अहो भाग्य है, हम सबका जो गुरुदेव की कलि-कल्मषापहारिणी मधुर वाणी का श्रवण करने को मिलेगा।

तभी क्रन्दन और चित्कार करते हुये एक व्यक्ति वहाँ 'त्राहि त्राहि' कहकर आचार्यजी के चरणों में दण्डवत् प्रणाम कर आर्तभाव से कहता है – 'गुरुदेव हमारी रक्षा कीजिये ! हमारी रक्षा कीजिये! मैं आपकी शरण में आया हूँ।'

आचार्यजी ने अपनी गम्भीरता भंग करते हुये सस्नेह पूछा – 'शान्त होओ वत्स ! शान्त होओ ! तुम इतना भयभीत क्यों हो? क्या किसी हिंसक जीव ने तुम्हारे ऊपर आक्रमण किया है? क्या कोई शत्रु तुम्हारा पीछा कर रहे हैं? क्या किसी शारीरिक व्याधि से ग्रस्त और व्यथित हो?'

शिष्य ने कहा – 'गुरुदेव, न मुझे किसी हिंसक जीवों का भय है और न ही कोई मेरा शत्रु है। शरीर-व्याधि होते हुये भी उतना पीड़ित नहीं हूँ।' आचार्यजी ने पूछा – ''तब क्यों इतना भयभीत हो? उसने कहा – 'हे गुरुदेव ! मैं माया से ग्रस्त-त्रस्त और भयभीत हूँ। मेरी रक्षा कीजिये !'

उसका करुण क्रन्दन काव्य-निर्झरिणी में प्रवाहित होने लगा। वह गुरुदेव के चरण पकड़कर रुदन करने लगा –

मोहि माया बहुत सतायो। हे गुरु शरण में आयो !!
वात-पित-कफ रोग सतावे। ममता मोह की व्याधि आवे।
तिल तिल तृष्णा जरायो। हे गुरु शरण में आयो !!

यह माया बड़ी विचित्र है। शरीर मर जाता है, लेकिन माया, आशा, तृष्णा नहीं मरती। कबीरदासजी कहते हैं –

माया मुई न मन मुआ मरि मरि गया शरीर।
आसा तृष्णा ना मुई यो कहै दास कबीर।।

कबीरदासजी इस महाठगिनी माया के सम्बन्ध में कहते हैं कि माया त्रिगुण पाश लेकर मधुर वाणी बोलकर जीव को फँसा लेती है। इसलिये इससे सावधान रहो –

माया महा ठगिनी हम जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोलत, बोलत मधुरी बानी।।

गोस्वामीजी ने भी कहा कि यह माया सबको नचाती है – **जो माया सब जगहि नचावा।** अत: इससे हमारी रक्षा करें।

आचार्यजी ने पूछा, 'क्या तुम यज्ञ-समिधा, गुरु-दक्षिणा लाये हो?' उसने कहा, 'प्रभो ! मैं केवल माया से दग्धचित्त और उद्विग्न, व्यथित हृदय लेकर आया हूँ। अपनी कृपा-वारि से सिंचन कर मेरे चित्त में शान्ति और आनन्द प्रदान कीजिये।'

तब सस्नेह दयानिधान आचार्यजी ने कहा – हे वत्स ! जीवन में सुख-राशि, आनन्दसिन्धु, मायापति भगवान के चरणों में जाने से ही माया से मुक्ति और शान्ति मिलती है। माया उनके अधीन है। इसलिये भगवान का दर्शन-भजन करो। भगवान का दर्शन कैसे मिलेगा, इसका मार्ग तो भगवत्स्वरूप सद्गुरु ही बताते हैं। अत: गुरु के शरणागत होओ। गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं –

श्रीहरि-गुरु-पद-कमल भजहु मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि सुख-निधान भगवान।।[१]

– हे मन! तू अभिमान छोड़कर भगवान रूपी श्रीगुरु के चरणारविन्दों का भजन कर, जिनकी सेवा करने से सुख-निधान, आनन्दघन भगवान श्रीहरि की प्राप्ति हो जाती है।

OOO

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. विनयपत्रिका, पद-२०३

गुरु-पूर्णिमा विशेष

गुरु और शिष्य

स्वामी अलोकानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है और प्रत्येक व्यक्ति में आत्म-विकास की सम्भावना होती है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उसे बाहरी सहायता की कोई आवश्यकता नहीं है। अपनी आन्तरिक शक्ति और ज्ञान की अभिव्यक्ति के लिये एक प्रेरक या प्रोत्साहक की आवश्यकता होती है। यह शक्ति केवल पुस्तकों को पढ़ने से प्राप्त नहीं की जा सकती। इसलिए, ज्ञान-दीप या सूर्य सम तेजस्वी किसी व्यक्ति की आवश्यकता होती है। जैसे एक दीपक से दूसरा दीपक प्रज्वलित किया जा सकता है, वैसे ही ज्ञान से प्रकाशित व्यक्ति ही ज्ञान प्रदान कर सकता है। ऐसे व्यक्ति को शाश्वत भारतीय (हिन्दू) परम्परा में गुरु कहते हैं। गुरु का कार्य अज्ञान के अन्धकार को दूर करना और शिष्य के हृदय में ज्ञान का दीप प्रज्वलित करना है। इसलिए शास्त्रों ने ऐसे व्यक्ति के लिये 'गुरु' शब्द का चयन किया है।

गुरु शब्द की व्युत्पत्ति क्या है? – 'गु' का अर्थ है अन्धकार, और 'रु' का अर्थ है उसे दूर करनेवाला। इस प्रकार, जो अज्ञान के अन्धकार को मिटाता है, उसे 'गुरु' कहा जाता है।[१]

गुरु की आवश्यकता – हमारे माता-पिता हमें जन्म देते हैं और हमारा पालन-पोषण करते हैं। वे नैतिक शिक्षा के माध्यम से हमारे मन को शुद्ध और प्रशिक्षित करते हैं। लेकिन यह सब सीमित होता है। जैसे ही हमारा भौतिक शरीर नष्ट होता है, वैसे ही हमारी अधिकांश चीजें समाप्त हो जाती हैं। केवल धर्म ही है, जो मृत्यु के बाद भी हमारे साथ रहता है। शास्त्रों में कहा गया है कि धर्म ही इस ब्रह्माण्ड का आधार है, यानी पूरा विश्व धर्म पर टिका हुआ है। इस धर्म के मार्ग पर गुरु ही मार्गदर्शक होते हैं। इसी कारण से गुरु को माता-पिता से भी श्रेष्ठ माना गया है।

गुरु का महत्त्व – ज्ञानार्णव तन्त्र में कहा गया है –

जन्महेतूहि पितरौ पूजनीय प्रयत्नतः।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माधर्मप्रदर्शकः।।

– जन्मदाता माता-पिता अवश्य ही पूज्य हैं, लेकिन धर्म-अधर्म के ज्ञानदाता गुरु विशेष रूप से पूज्य हैं।

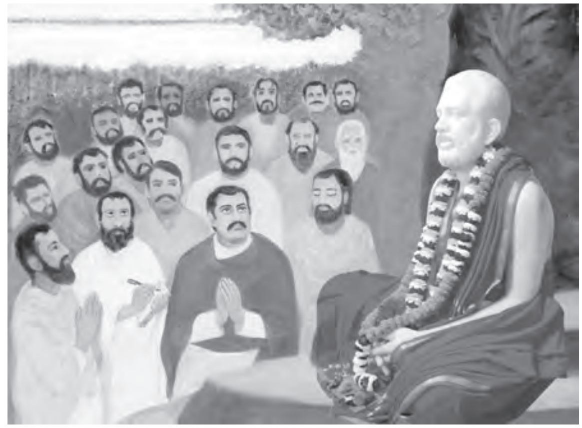

महर्षि व्यास ने कहा है –

गुरुमूलाः क्रियाः सर्वाः भुक्तिमुक्ति-फलप्रदाः।
तस्मात् सेव्या गुरुर्नित्यं मुक्त्यर्थं तु समाहितैः।।
आचार्यस्य प्रियं कुर्यात् प्राणैरपि धनैरपि।
कर्मणा मनसा वाचा स याति परमां गतिम्।।

– गुरु की कृपा से भुक्ति और मुक्ति मिलती है। इसलिये मुक्ति हेतु नित्य श्रद्धापूर्वक गुरु की सेवा करनी चाहिये। गुरु की प्रसन्नता हेतु तन-मन-धन और वाणी से जो सेवा करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।

श्रीमद्भागवत में स्वयं भगवान उद्धवजी से कहते हैं –

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः।।[२]

– 'आचार्य को मेरा ही रूप जानो और कभी भी उनका अपमान मत करो। उन्हें एक सामान्य मनुष्य मत समझो। गुरु सर्वदेवस्वरूप होते हैं।'

तन्त्रसार (भाग ११) में कहा गया है :

अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जप-पूजादिका क्रिया।
न भवन्ति प्रिये तेषां शिलायामुप्तबीजवत्।।

– जो व्यक्ति गुरु से दीक्षा लिए बिना जप, पूजा आदि करता है, उसकी सारी साधनाएँ व्यर्थ हो जाती हैं, जैसे पत्थर पर बीज बोने से कोई अंकुर नहीं निकलता।'

गुरु-शिष्य-परम्परा का महत्त्व – गुरु-परम्परा के महत्त्व को श्वेताश्वतरोपनिषद में कहा गया है कि विद्या परम्परा से यथावत मिलती है – **श्रुतं ह्येव मे भगवद्-दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापतीति तस्मै हैतदेवोवाचात्र ह न किञ्चन वीयायेति वीयायेति।**[३]

– 'मैंने भगवान – श्रीमान् सदृश ऋषियों से सुना है कि आचार्य से जानी गयी विद्या सर्वोत्तम होती है। तब आचार्य ने उसे उसी विद्या का उपदेश दिया। उसमें कोई कमी नहीं थी, वह पूर्ण विद्या थी।' अर्थात् परम्परा से प्राप्त विद्या पूर्ण रहती है।

एक शिक्षक केवल विषयों का ज्ञान दे सकता है, लेकिन गुरु आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करते हैं। इसलिए गहन आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति हेतु ज्ञानी सुयोग्य गुरु की आवश्यकता होती है।

श्रीमाँ सारदा देवी ने कहा है – ''मन्त्र से शक्ति आती है। गुरु के माध्यम से शिष्य में शक्ति संचारित होती है। मन्त्र से शरीर शुद्ध होता है। ईश्वर के मन्त्र का जप कर मनुष्य शुद्ध होता है। एक बार ऋषि नारद बैकुण्ठ गये और नारायण से बहुत देर तक वार्तालाप किया। जब नारदजी वहाँ से चले गये, तब नारायण ने लक्ष्मीजी से उस स्थान को साफ करने और गोबर से लीपकर शुद्ध करने को कहा। लक्ष्मीजी ने पूछा, ऐसा क्यों, नारदजी तो महान भक्त हैं। नारायण ने कहा, नारदजी ने अब तक औपचारिक रूप से दीक्षा नहीं ली है। बिना दीक्षा के शरीर शुद्ध नहीं होता।[४]

आदि शंकराचार्य ने भी कहा है कि गुरु-शिष्य-परम्परा से ज्ञान की परम्परा सुदृढ़ होती है। ठीक वैसे ही जैसे वृक्ष में कलम लगाई जाती है, ताकि वह शीघ्र ही अच्छा फल दे सके, वैसे ही एक प्रबल गुरु-शिष्य-सम्बन्ध ज्ञान को पुष्ट करता है।

स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा है : 'गुरु वह माध्यम है जिसके द्वारा आध्यात्मिक ऊर्जा शिष्य तक प्रवाहित होती है। गुरु जो भी गुरु-परम्परा से गुरु-मन्त्र या आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करते हैं, वे पीढ़ी दर पीढ़ी शिष्यों को हस्तान्तरित करते हैं। बिना गुरु के कोई भी आध्यात्मिक साधना या उन्नति सम्भव नहीं है, बल्कि इसके विपरीत, गलत साधना से हानि हो सकती है।'[५]

१६वीं शताब्दी के महान सन्त सूरदास ने कहा है –

गुरु बिना नहीं बाट। कौड़ी बिना नहीं हाट।।

– 'गुरु के बिना सन्मार्ग नहीं मिलता, कोई आशा नहीं, जैसे धन के बिना कोई व्यापार नहीं हो सकता।'

सच्चिदानन्द ही गुरु हैं – श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा है : 'भगवान ही सच्चे गुरु, पिता और शासक हैं। किसी मनुष्य में यह शक्ति नहीं कि वह किसी अन्य को इस संसार के बंधनों से मुक्त कर सके। केवल वही व्यक्ति इस मोहिनी माया से मुक्त कर सकता है, जिसके पास इसकी वास्तविक शक्ति है। सच्चिदानन्द गुरु के बिना मुक्ति सम्भव नहीं।'

गुरु ही सच्चिदानन्द हैं – श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा है : 'सच्चिदानन्द ही गुरु हैं। यदि किसी व्यक्ति के माध्यम से आध्यात्मिक जागरण होता है, तो निश्चित रूप से यह समझना चाहिए कि सच्चिदानन्द ने ही गुरु का रूप धारण किया है। गुरु एक मित्र के समान हैं, जो आपका हाथ पकड़कर आपको आपके लक्ष्य तक पहुँचाते हैं।'[६]

तुलसीदासजी रामचरितमानस में गुरु की प्रार्थना करते हुए कहते हैं –

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।[७]

'मैं उन गुरु महाराज के चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ, जो कृपासिन्धु और नररूप में श्रीहरि भगवान ही हैं और जिनकी वाणी महामोह रूपी घने अन्धकार का नाश करने के लिये सूर्य की किरणों के समूह हैं।'

सूरदासजी कहते हैं – 'गुरु मन के अन्धकार को दूर करनेवाले हैं और करोड़ों सूर्य-चन्द्र के समान हैं, जो बाहरी अन्धकार को मिटाते हैं।'

गुरु सर्वोच्च सत्ता हैं, जिन्होंने मानव रूप धारण किया है। उन्हें साधारण मनुष्य नहीं समझना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति अपने गुरु को सच्चिदानन्द मानकर उनके प्रति प्रेम और भक्ति अर्पित करता है तथा उनकी शिक्षाओं को श्रद्धा से स्वीकार करता है, तो उसे ही ज्ञान-ज्योति प्राप्त होती है। शास्त्र भी कहते हैं,

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देव तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।८।।

– जो भगवान और गुरु की समान रूप से परम श्रद्धा-भक्ति करता है, उसे ही आध्यात्मिक सत्य प्रकट होते हैं।

गुरु की शक्ति से परिवर्तन – मानव-गुरु की स्वयं भगवान के रूप में श्रद्धा करनी चाहिए। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा है – 'यदि तुममें श्रद्धा हो, तो यह पर्याप्त है। एकलव्य ने जंगल में मिट्टी की बनी द्रोणाचार्य की मूर्ति के समक्ष धनुर्विद्या का अभ्यास किया था। उन्होंने उस मूर्ति को ही वास्तविक द्रोणाचार्य मान लिया और वे महान धनुर्धर बन गए।'[९] इसी प्रकार, अटूट श्रद्धा और गुरु की वाणी में विश्वास के कारण बहुत से लोगों ने युगों-युगों तक मानव समाज में रत्न के समान स्थान प्राप्त किया है। हमारे शास्त्रों में उपमन्यु, उद्दालक, आरुणि, नचिकेता, सत्यकाम आदि महान शिष्यों के उदाहरण मिलते हैं। डाकू रत्नाकर का महर्षि वाल्मीकि में परिवर्तन गुरु-भक्ति का एक ज्वलन्त उदाहरण है। इसी प्रकार तोटकाचार्य की महानता उनके गुरु आदिशंकराचार्य के प्रति उनकी गहन श्रद्धा और भक्ति का परिणाम थी। जगाई और मधाई जैसे दुष्ट व्यक्तियों का जीवन गुरु चैतन्य महाप्रभु की कृपा से परिवर्तित हो गया। आधुनिक काल में नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस में सम्पूर्ण विश्वास रखने के कारण विश्वगुरु और महान संत बने। अशिक्षित लाटू (स्वामी अद्भुतानन्द) ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर महान संत बने। नशे में डूबे गिरीशचन्द्र घोष भी गुरु की भक्ति से महान भक्त बन गए। स्वामी रामकृष्णानन्द गुरु-भक्ति और सेवा के सबसे उज्ज्वल दृष्टान्तों में से एक हैं।

गुरु के गुण – हिन्दी में एक कहावत है – '**गुरु मिले हजार हजार चेला मिले न एक।**' – 'हजारों गुरु मिल सकते हैं, लेकिन एक सच्चा शिष्य मिलना कठिन है।' आजकल सभी लोग गुरु बनना चाहते हैं। इस प्रतिस्पर्धा के युग में सच्चे गुरु को पहचानना कठिन हो गया है। यदि कोई व्यक्ति बिना जाँच-पड़ताल के किसी को गुरु बना ले, तो उसे कष्ट भोगना पड़ता है। श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते हैं : 'एक सच्चे गुरु को पहचानने के संकेत होते हैं। काशी के बारे में वही व्यक्ति सही जानकारी दे सकता है, जो स्वयं वहाँ गया हो और उसे देखा हो। केवल सुनी-सुनाई बातों से काम नहीं चलता।' उन्होंने आगे कहा – 'गुरु को दिन और रात, दोनों समय पर परखो।'

शास्त्रों में सद्गुरु के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं –

श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः।
ब्रह्मण्यपुरतः शान्तो निरीन्धन इवानलः।।
अहैतुकदयासिन्धुर्बन्धुरानमतां सताम्।।[११]

– जो वेदों में पारंगत हो, जो पापरहित हो, जिसे कोई सांसारिक इच्छा न हो, जो ब्रह्मज्ञानी हो, जो स्वयं ब्रह्म में स्थित हो, जो ईंधन को भस्म कर देनेवाली अग्नि के सदृश शान्त हो, जो करुणा का अथाह सागर हो और निष्काम प्रेम करता हो और जो सज्जनों का सच्चा मित्र हो।[११]

ऐसे गुरु का सान्निध्य और मार्गदर्शन शिष्य के लिए वसंत ऋतु के समान फलदायी होता है। इसलिए कहा गया है कि गुरु शान्त, उदार और परोपकारी होते हैं, वे दूसरों के कल्याण के लिए कार्य करते हैं, जैसे वसंत ऋतु प्रकृति को हरा-भरा कर देती है। वे स्वयं इस जन्म-मृत्यु के भयानक सागर को पार कर चुके होते हैं और नि:स्वार्थ भाव से दूसरों को भी पार कराने में सहायता करते हैं।[१२]

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – 'सूर्य देखने के लिए किसी दीपक या मोमबत्ती की आवश्यकता नहीं होती। जब सूरज उगता है, तो हम स्वाभाविक रूप से उसकी उपस्थिति का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार जब कोई सच्चा गुरु हमें मार्गदर्शन देने आता है, तो आत्मा स्वत: ही उनकी उपस्थिति को पहचान लेती है।'[१३]

गुरु अपनी मात्र इच्छा, स्पर्श या दृष्टि से दूसरों में आध्यात्मिक शक्ति का संचार कर सकते हैं। तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार, गुरु अपनी मन:स्थिति की तीव्रता के माध्यम से शाम्भवी दीक्षा दे सकते हैं। सामान्य गुरु मात्री और आणवी दीक्षा देने के अधिकारी होते हैं। सिद्ध गुरु शिष्य को बाहरी सहायता के बिना केवल अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा दिव्य ज्ञान प्रदान करते हैं, उसे शक्ति दीक्षा कहा जाता है। शाम्भवी दीक्षा में गुरु और शिष्य के बीच कोई औपचारिक संकल्प नहीं होता, लेकिन गुरु की करुणा जागृत होती है और वे आशीर्वाद देना चाहते हैं। मात्री दीक्षा में गुरु कलश और देव-स्थापन कर शिष्य के कान में मन्त्र देते हैं।

शिष्य के गुण – शिष्य को आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन प्राप्त करने के लिये गुरु के पास पूर्ण समर्पण और श्रद्धा के साथ जाना चाहिए। जैसे पानी ऊँची जगह पर नहीं रुकता, वैसे ही अहंकारी व्यक्ति को सच्चा ज्ञान नहीं मिल सकता। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है –

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।।[१४]

– उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिये शिष्य को श्रद्धापूर्वक हाथ में समिधा (हवन की लकड़ी) लेकर श्रोत्रिय, शास्त्रज्ञ गुरु के पास जाना चाहिये। श्रीमद्भगवद्-गीता में भी कहा गया है –

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।४.३३।।

– उस ज्ञान को तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर जानो। उनको प्रणाम करने से, उनसे जिज्ञासा करने से और उनकी सेवा करने से वे तुम्हें उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।

गुरु के गुणों पर विचार करना प्रारम्भ में आवश्यक हो सकता है, लेकिन एक बार गुरु को स्वीकार करने के बाद, उनकी शिक्षाओं पर विश्वास करना आवश्यक है। कहा गया है, 'यद्यपि मेरे गुरु मधुशाला में जाते हैं, फिर भी मेरे गुरु नित्यानन्द राय ही हैं, ऐसी श्रद्धा अवश्य होनी चाहिये। सच्ची श्रद्धा का अर्थ यह नहीं है कि गुरु की चापलूसी की जाए। बल्कि गुरु की शिक्षाओं में दृढ़ विश्वास और श्रद्धा असम्भव को भी सम्भव बना देती है। गुरु नानक के शिष्यों की अपने गुरु में इतनी अटूट श्रद्धा थी कि वे युद्ध में अपने प्राण देने से भी नहीं डरे। वे केवल एक ही मंत्र जपते थे – 'वाहे गुरुजी की फतेह!' (गुरुजी की जय हो!)

श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा है : 'तुम जानते हो, गुरु के प्रति श्रद्धा कैसी होनी चाहिये? गुरु के प्रति श्रद्धा वैसी होनी चाहिए, जैसी अर्जुन की थी। एक बार अर्जुन और श्रीकृष्ण रथ में यात्रा कर रहे थे। श्रीकृष्ण ने आकाश की ओर देखा और कहा, 'देखो, कितने सुन्दर कबूतर उड़ रहे हैं !' अर्जुन ने तुरन्त कहा, 'हाँ मित्र, बहुत सुन्दर कबूतर हैं।' अगले ही क्षण, श्रीकृष्ण ने कहा, 'अरे! ये तो कबूतर नहीं हैं।' अर्जुन ने भी तुरन्त कहा, 'हाँ मित्र, ये कबूतर नहीं हैं।' अर्जुन की सत्यनिष्ठा अतकर्य सन्देह से परे थी। ऐसा कहकर उन्होंने श्रीकृष्ण की चापलूसी नहीं की। लेकिन उनमें अपने गुरु के प्रति इतनी गहरी श्रद्धा और विश्वास था कि उन्होंने वही देखा जो श्रीकृष्ण ने कहा।[१५]

गुरु के चरणों में आत्मसमर्पण – श्रद्धा ही मनुष्य को उसके लक्ष्य तक पहुँचने में सहायता करती है। व्यक्ति के पास धन, यश, सौन्दर्य, विद्या सब कुछ हो सकता है, लेकिन यदि वह अपना मन और आत्मा गुरु के चरणों में समर्पित नहीं करता, तो कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। आदि-शंकराचार्य जी ने कहा है :

शरीरं सुरूपं सदा रोगमुक्तं
यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम्।
गुरुरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।

– 'मनुष्य का शरीर सुंदर हो, वह सदैव स्वस्थ रहे, उसे महान यश हो और मेरु पर्वत जितना धन प्राप्त हो, लेकिन यदि उसका मन गुरु के चरणों में समर्पित नहीं है, तो इन सबका क्या मूल्य है?'

श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा है : 'गुरु-वाणी में श्रद्धा रखो। उनकी शिक्षाओं को दृढ़ता से पकड़े रहने से ही ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है, ठीक वैसे ही जैसे एक धागे के सहारे गुप्त खजाने तक पहुँचा जा सकता है।'[१७] 'मनुष्य को अपने गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र का श्रद्धापूर्वक जप करना चाहिए। ऐसा कहा जाता है कि यदि स्वाति नक्षत्र की वर्षा की एक बूँद सीप के मुँह में गिर जाए और वह वहीं बनी रहे, तो समय के साथ वह मोती में परिवर्तित हो जाती है।[१८]

हम इस आलेख को स्वामी शिवानन्द महापुरुष महाराज के वचनों से समाप्त करेंगे, जिसे उन्होंने दीक्षा के समय अपने दीक्षार्थियों को सम्बोधित करते हुये कहा था – शास्त्रों में कहा गया है कि जब सद्गुरु किसी शिष्य को दीक्षा देते हैं, तो स्वयं ईश्वर गुरु के हृदय में प्रकट होकर शिष्य में आध्यात्मिक शक्ति का संचार करते हैं। ईश्वर ही सच्चे गुरु हैं, मनुष्य कभी गुरु नहीं हो सकता। 'तुम्हारे पूर्व जन्म के महान पुण्य के कारण करुणामय उद्धारकर्ता श्री रामकृष्ण ने तुम्हें अपने चरणों में शरण दी है। आज मैंने तुम्हें उनके चरणों में समर्पित कर दिया है। अब से तुम्हारे वर्तमान और भविष्य का सारा उत्तरदायित्व उन्होंने अपने ऊपर ले लिया है।' ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. गुरु गीता, श्लोक २० **२.** श्रीमद्भागवत ११/१७/२७ **३.** छान्दोग्योपनिषद ४/९/३ **४.** श्रीमाँ की वाणी पृष्ठ ७६ **५.** कम्पलीट वर्क आफ स्वामी विवेकानन्द, ७/६३ **६.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत १/२१७ **७.** श्रीरामचरित-मानस, बालकाण्ड, सोरठा ५ **८.** श्वेताश्वतरोपनिषद ६/२३ **९.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत १/२९२ **१०.** वही, २/७८ **११.** विवेकचूडामणि, ३३ **१२.** वही, ३७ **१३.** क.व. ३/४७ **१४.** मुण्डकोपनिषद,१/२/१२ **१५.** श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग **१६.** गुर्वाष्टकम् १ **१७.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत १/५२४ **१८.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत २/१०१७

जप और ध्यान

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

(गतांक से आगे)

ध्यान की पद्धति

प्रश्न : मै ध्यान किया करता था, लेकिन अब मैं जब भी ध्यान करने बैठता हूँ, मेरा मन एकाग्र नहीं होता। मेरा मन कुछ और ही सोचता रहता है। मुझे क्या करना चाहिए।

उत्तर : १. पहले शरीर को बिना हिलाए-डुलाये २० से ३० मिनट तक स्थिर बैठने का प्रयत्न करो। यह मन को स्थिर करने में काफी सहायक होगा

२. इसके बाद, स्वामी विवेकानन्द, श्रीरामकृष्ण या बुद्ध जैसी पवित्रात्मा के चित्र को एकटक होकर निहारो।

३. इसके पश्चात् उसी आसन पर बिना हिले आँखें बंद कर उसी चित्र को मन में देखने का प्रयास करो।

४. मन को व्यर्थ चंचल करनेवाली क्रियाओं, जैसे टीवी में बेकार की चीजें देखना या उटपटांग साहित्य पढ़ने से दूर रहो।

५. दैनंदिन गतिविधियों के लिए समय सारणी बनाओ तथा उस पर दृढ़ रहो, साथ ही उत्साहवर्धक और प्रेरक साहित्य जैसे गीता या स्वामी विवेकानन्द साहित्य भी पढ़ते रहना चाहिए।

दिन का आरम्भ (लगभग ५ बजे) ध्यान से करो। ध्यान के बाद योगासन या व्यायाम कर सकते हो। लेकिन यदि ध्यान में नींद आये, तो व्यायाम के बाद ध्यान करना चाहिए।

प्राणायाम

प्रश्न – मैंने सुना है की हमें जप या इष्ट देवता को देखने का प्रयास नहीं करना चाहिए, बल्कि श्वास-प्रश्वास पर ही ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। क्या ऐसा करना उचित है?

उत्तर : श्वास पर मन को केन्द्रित करना एक प्रकार से एकाग्रता का अभ्यास ही है। लेकिन इससे केवल मन को शान्त करने में सहायता मिलती है, जबकि इष्ट देवता पर ध्यान ही वस्तुत: ध्यान है। ध्यान के साथ-साथ जप भी करना चाहिए।

प्रश्न : ध्यान बहुत कठिन है। क्या हम ध्यान के सहायक रूप में प्राणायाम कर सकते हैं?

उत्तर : हाँ, यह ठीक है कि ध्यान सहज नहीं है और इसमें प्रतिष्ठित होने के लिए बहुत निष्ठा और समर्पण के साथ अनलस निरन्तर अभ्यास आवश्यक है। बहुत से लोग इस प्रयास को अनवरत नहीं रख पाते, अत: असफल हो जाते हैं। प्राणायाम श्वास पर नियंत्रण कर मन की उछल-कूद को कम तो कर सकता है, लेकिन निरन्तर अभ्यास महत्त्वपूर्ण है। प्राणायाम किसी गुरु के सान्निध्य में ही करना चाहिए, अन्यथा इससे हानि पहुँच सकती है। एक सुव्यवस्थित और नियमित जीवन प्राणायाम की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न : प्राणायाम का आरम्भ कैसे करें?

उत्तर : पहले एक नाक से साँस निश्चित समय में अन्दर खींचो, फिर बिना रोके दूसरी नाक से उतने ही समय में बाहर निकाल दो, इसके बाद दूसरी नाक से उतनी ही देर में साँस लो और पहली नाक से निकाल दो। इसे नाड़ी-शुद्धि कहते हैं अर्थात् श्वास को बिना रोके अन्दर-बाहर फेंकना। इसको ही छह महीने तक करते जाओ। धीरे-धीरे श्वास-प्रश्वास की संख्या या समय बढ़ाते जाओ अर्थात् इनको बिना साँस रोके जितना लम्बा खींच सको, खींचो। इससे ही तुम्हें बहुत अधिक लाभ मिलेगा। इसके आलावा साँस लेते समय मन में भावना लानी चाहिए कि पवित्रता, शक्ति, प्रेम, शान्ति आदि सद्‌गुण मुझमें आ रहे हैं तथा साँस छोड़ने के साथ दुर्बलता, अपवित्रता, घृणा, चंचलता आदि बाहर हो रहे हैं।

दुर्भाग्य है कि एक प्रतिशत भी श्वास-प्रश्वास की इस साधारण और सहज क्रिया को जारी नहीं रख पाते। वे आकर पूछते हैं – ''क्या आप मुझे दूसरी क्रिया सिखाएँगे?'' खीर का स्वाद तो खाने में ही है।

ध्यान के विषय

प्रश्न : क्या यह आवश्यक है कि हम साकार ईश्वर (इष्ट देवता) पर ध्यान केन्द्रित करें? क्यों न हम एक प्रकाश-पुंज पर ध्यान केन्द्रित करें?

उत्तर : ध्यान का अर्थ है शरीर के किसी केन्द्र, जैसे हृदय, भृकुटी या मस्तिष्क में किसी भी वस्तु पर विचारों का निरन्तर और घनप्रवाह। ध्यान का विषय कुछ भी हो सकता है, जैसे ईश्वर का साकार रूप या कोई आध्यात्मिक व्यक्तित्व या ज्योति। कोई बाह्यवस्तु जैसे पेड़ या पर्वत को भी ध्यान का विषय बनाया जा सकता है, परन्तु ध्यान के लिए ईश्वरीय या आध्यात्मिक विषय चुनना सर्वोत्तम है। ध्यान के लिए ज्योतिस्वरूप परमात्मा भी एक श्रेष्ठ और शास्त्र अनुमोदित विषय है।

प्रश्न : कौन-सा ध्यान आध्यात्मिकता के लिए अधिक लाभदायक है?

उत्तर : ईश्वर के रूप का ध्यान अधिक उपयुक्त है। हम स्वयं शरीरधारी हैं, इसलिए रूप के ध्यान या साकार ध्यान से अनाड़ी मन को स्थिर करना आसान होता है। इसके अलावा दैवी व्यक्तित्व के ध्यान से बहुत से सद्‌गुण विकसित होते हैं और जब ईश्वर या अवतारी पुरुषों पर प्रेम उत्पन्न होता है, तो ध्यान सहज हो जाता है। ये अवतारी पुरुष हमें देहात्म-बोध से परे ले जाते हैं तथा रूप के परे तत्त्व को ग्रहण करने में सहायता प्रदान करते हैं।

प्रश्न : क्या कोई श्वास पर ध्यान केन्द्रित कर सकता है?

उत्तर : हाँ, लेकिन इससे केवल मन शान्त होगा।

प्रश्न : श्रीरामकृष्ण कहते हैं, पानी निकालने के लिए हमें एक ही स्थान पर खोदना चाहिए। मेरा मन विभिन्न समय में भिन्न-भिन्न देवताओं में लगता है। मुझे क्या करना चाहिए?

उत्तर : यह बहुत जरूरी है कि हमारा मन ध्यान में किसी एक ही देवता पर स्थिर हो। इसलिए अलग-अलग समय में ध्यान में यदि अलग-अलग देवता आयें, तो उन्हें अपने इष्ट देवता में विलीन करने का प्रयत्न करो।

प्रश्न : कहा जाता है कि स्वामी विवेकानन्द ने भारत की समस्याओं पर ध्यान किया था। आप तो मन को शान्त करने को कहते हैं। तब किसी समस्या पर ध्यान करने का क्या अर्थ है?

उत्तर : ध्यान का विषय ईश्वर, ईश्वरीय ज्योति, कोई भौतिक वस्तु या कोई विचार हो सकता है। वस्तुत: किसी विचार पर ध्यान उच्च स्तर का ध्यान है। उदाहरण के लिये श्रीरामकृष्ण ने 'सभी जीवों पर दया', इस पर ध्यान किया और एक नया तत्त्व 'शिव ज्ञान से जीव सेवा' का आविष्कार किया। इसी प्रकार जब स्वामी विवेकानन्द ने भारत की समस्या पर ध्यान किया, तो उन्होंने इसका समाधान खोजा। ध्यान के दौरान श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द का मन एक ही विषय में प्रवाहित होता था, क्योंकि वह शान्त तथा अचंचल था, अन्यथा वे नया तत्त्व-आविष्कार नहीं कर सकते थे।

प्रश्न : क्या आत्म-समीक्षा और ध्यान में कोई अन्तर है?

उत्तर : अवश्य, ध्यान-परायण मन स्वनिरीक्षण करता है और उसमें भेदन-क्षमता बहुत होती है। इसलिए वह स्वयं की समीक्षा कर, उसकी उन्नति में बाधक चीजों का पता लगा सकता है। इसके अतिरिक्त वह अवचेतन मन के अन्त:स्थल में सुप्त संस्कारों को ढूँढ़कर उनका समाधान कर सकता है।

प्रश्न : मुझे पढ़ाई के समय गाना सुनने की आदत है। क्या हम ध्यान के समय संगीत सुन सकते हैं?

उत्तर : भक्ति संगीत और उच्चांग संगीत मन को शान्त और एकाग्र करने में सहायक हो सकते हैं। श्रीरामकृष्ण भक्तिपूर्ण संगीत सुनकर समाधिस्थ हो जाते थे। हमारे आश्रमों में भी ध्यान से पहले वैदिक पाठ और स्तोत्र गाने की परम्परा है। कुछ लोग गाने के अर्थ पर भी मन एकाग्र करते हैं। यह भी एक प्रकार का ध्यान ही है। ध्यान से पहले १० मिनट के लिए भक्ति संगीत सुना जा सकता है।

प्रश्न : क्या हम ध्यान के लिए सहायक रूप में वैदिक मंत्र सुन सकते हैं? क्योंकि मन चंचल है और गाना सुनना चाहता है।

उत्तर : इस प्रकार की एकाग्रता सालम्ब ध्यान है और सच्चे अर्थ में ध्यान नहीं है। ध्यान तीव्र क्रियाशीलता है और उसका निरालम्ब अभ्यास ही करना चाहिए। यदि एक बार हमको किसी सहारे की आदत पड़ जाये तो हम सर्वदा इसके आश्रित हो जायेंगे। आरम्भ में इसका थोड़ा-बहुत सहारा ले सकते हैं, लेकिन अभी या बाद में बिना किसी बाह्य आलम्बन के ध्यान करना सीखना होगा। मन यदि गाना सुनना चाहता है, तो सुन सकते हैं, लेकिन जैसे ही मन थोड़ा शान्त होता है, तुरंत बिना इनके ध्यान करने की चेष्टा करनी चाहिए।

प्रश्न : गुण-ध्यान और स्वरूप-ध्यान क्या हैं? एक से दूसरे की ओर कैसे बढ़ा जा सकता है?

उत्तर : ध्यानारम्भ रूप-ध्यान से किया जाता है। इष्ट देवता की मूर्ति या चित्र पर ध्यान रूप-ध्यान कहलाता है। सभी सन्त पुरुषों या अवतार पुरुषों में दया, प्रेम, त्याग, संयम आदि दैवी गुण होते हैं। अत: रूप-ध्यान का धीरे-धीरे गुण-ध्यान में लय होना चाहिए। गुण-ध्यान के लिए हमारे चेतन और अवचेतन मन में ध्येय इष्टदेवता के दैवी गुणों की कुछ जानकारी होनी चाहिए। जैसे-जैसे हम रूप-ध्यान में स्थिर होते हैं, हम इष्ट के गुणों का स्वत: ही चिन्तन करने लगते हैं। हम सभी ध्यान के समय यह सोचते ही हैं कि हमारे इष्ट प्रेम, स्नेह और आनन्द से परिपूर्ण हैं। ध्यान के समय इष्ट के इस आनन्द को स्वयं में अनुभव करना चाहिए। जैसे-जैसे हम साधना में अग्रसर होंगे, वैसे-वैसे हम इष्ट की दिव्य उपस्थिति का अनुभव कर पाएँगे। हमें जोर करके इष्ट के गुणों पर ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है। इसके पश्चात् रूप और गुणों से परे केवल दिव्य चैतन्य की अनुभूति होती है। यही स्वरूप ध्यान है। इसके पश्चात् ध्यान के उच्चतम सोपान में हम इष्ट का सर्वभूतों में अनुभव कर पाते हैं।

ध्यान में बाधाएँ

प्रश्न : ध्यान के समय बहुत-से गंदे विचार मन में उठते हैं, जिससे ध्यान की अनिच्छा पैदा हो जाती है। इसका क्या उपाय है?

उत्तर : ध्यान के समय मन में गंदे विचारों का आना साधारण बात है। सभी साधकों को अपनी आध्यात्मिक साधना के आरम्भिक काल में इसका सामना करना पड़ता है। लेकिन इसके लिए ध्यानाभ्यास नहीं छोड़ना चाहिए। ध्यान के पहले कुछ अच्छा साहित्य पढ़ो या कुछ भजन गा लो, या ध्यान से पहले अपने मन को साक्षी भाव से देखो। ध्यान के समय इन विचारों को अधिक महत्त्व मत दो। यदि तुम इन्हें अधिक महत्त्व नहीं दोगे, तो ये स्वत: चले जायेंगे। ऐसे विचार यदि बहुत प्रबल हों, तो ध्यान छोड़कर कुछ पढ़ लेना चाहिए।

प्रश्न : नियमित आध्यात्मिक साधना करते समय कभी-कभी पूर्व संस्कार बहुत तीव्र वेग से उठते हैं और बहुत बाधा उत्पन्न करते हैं। हम निराश हो जाते हैं। हमें क्या करना चाहिए?

उत्तर : जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है, यह उन सभी की समस्या है, जो निष्ठा से साधना करना चाहते हैं। लेकिन यह निराशा का कोई कारण नहीं है। जैसे-जैसे नये संस्कार जन्म लेंगे, वैसे-वैसे पुराने संस्कारों की पकड़ ढीली पड़ जाएगी। नियमित ध्यान, स्वाध्याय, सत्संग करते रहो और नैतिक जीवन बिताओ।

प्रश्न : जैसे ही मैं आँखें बंद करता हूँ, वैसे ही मेरे मन में सारे दिन के क्रिया-कलाप से सम्बन्धित विचार आने लगते है। तब मन का नियंत्रण असंभव हो जाता है। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए?

उत्तर : ध्यान से पहले कुछ अच्छा शुभ साहित्य पढ़ लेना चाहिए। आवश्यक लगे, तो कुछ अच्छे विचारों, जैसे गीता के श्लोक या रामकृष्ण-वचनामृत को लिख लेना चाहिए। इससे मन को सही दिशा मिलेगी और बाहर की ओर मन का वेग दुर्बल हो जायेगा। इससे मन में विचारों को प्रशमित होने में सहायता मिलेगी। इसके बाद कुछ उपचार जैसे देवता के चित्र को साफ करना, फूल अर्पित करना, धूप दिखाना आदि कर सकते हो। इनसे भी सहायता मिलेगी।

दूसरी विधि है, मन-ही-मन जप करना और इसे मन-ही-मन सुनने का प्रयास करना। यदि इसे कर सको, तो तुमको दैनंदिन क्रिया सम्बन्धी विचार अधिक तंग नहीं कर पाएँगे। थोड़ा-बहुत सरल प्राणायाम भी कर सकते हो। ध्यान के लिये गुरु के निर्देशों का अक्षरश: पालन करना चाहिए।

प्रश्न : स्वामी तुरीयानन्द कहते थे कि जब तुम ध्यान के लिए बैठो, तो मन के दरवाजे पर 'प्रवेश निषेध' लिख दिया करो, ताकि बुरे विचार न घुस पायें। यह कैसे करें?

उत्तर : स्वामी तुरीयानन्द ध्यानसिद्ध योगी थे, वे अपनी इच्छा-शक्ति से मन के दरवाजे पर 'प्रवेश निषेध' लिख सकते थे और प्रतिकूल विचारों का उठना रोक सकते थे। विचार तो बाहर से नहीं आते, भीतर से ही उठते हैं। मुख्य बात है कि हमें ध्यान में सहायक विचारों के सिवा अन्य विचारों को मन में नहीं उठने देना चाहिए। इसके लिए इच्छा-शक्ति की आवश्यकता है। क्या हम नहीं जानते की घरों में ऐसा नोटिस होने के बावजूद भी कुछ लोग बिना अनुमति के प्रवेश

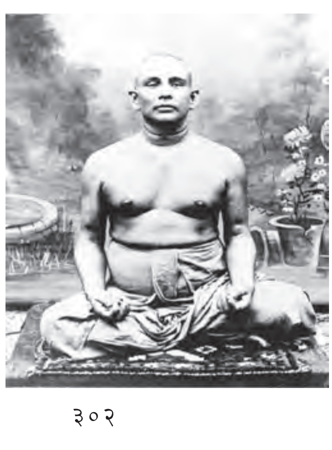

कर जाते हैं? इसीलिए सतर्क रहकर पहरा देना चाहिए। ध्यान में बैठने से पहले मन के एक भाग को अपने पर ही पहरा देने के लिए नियुक्त कर देना चाहिए। तुम स्वयं भी अपने मन का निरीक्षण कर सकते हो। बाद में मन को यह समझाना चाहिए कि ऐसे विचार हानिकारक हैं। इससे मन में विचार-प्रवाह कम हो जायेगा।

प्रश्न : ध्यान के समय कभी-कभी एक प्रकार की मानसिक शून्यता आ जाती है। उस समय मन में सुप्त इच्छाओं और आसक्ति से कैसे छुटकारा पाया जाये?

उत्तर : ध्यान करते समय ऐसी शून्यता का आना ठीक नहीं है। मन में हमेशा कुछ विधेयात्मक तत्त्व, जैसे मन्त्र, मन्त्र के शब्द या अर्थ, चित्र या मूर्ति, शुभ विचार आदि रहना चाहिए। मन यदि खाली रहेगा, तो शीघ्र ही बहुत तरह के विचार उसमें उठने लगेंगे। कामनाओं और आसक्ति का निराकरण इस शून्यता से सम्पूर्ण अलग विषय है। अलग-अलग प्रकार की आसक्तियों को दूर करने के लिए अलग-अलग प्रकार के उपाय हैं। साधारणतया ध्यान के साथ-साथ विवेक और वैराग्य (अनासक्ति) का अभ्यास ही हमें सफल कर सकता है।

प्रश्न : ध्यान के लिए बैठते ही मुझे नींद आ जाती है।

उत्तर : नींद आना कई कारणों से हो सकता है। पर्याप्त नींद का न होना एक कारण हो सकता है। ऐसे में थोड़ा और सो लेना चाहिए। यह भी हो सकता है कि तुम शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ न होओ। ऐसे में कुछ पौष्टिक भोजन लेना चाहिए। अति भोजन या कम भोजन से भी नींद आती है। इसके अलावा अति परिश्रम भी नींद का कारण हो सकता है। इनसे बचने के लिये दिनचर्या को नियमित करना चाहिए। थकान लगी हो, तो पहले विश्राम कर लेना चाहिए। पेट यदि अधिक भरा हो, तो भी ध्यान नहीं करना चाहिए। खाली पेट ध्यान ही अच्छा है।

उपरोक्त कारणों में से यदि कोई भी कारण नहीं है, तो ध्यान से पहले एक प्याला चाय या काफी ले सकते हो अथवा कुछ मिनट चहल-कदमी कर सकते हो, ताकि आलस्य दूर हो।

प्रश्न : क्या हम शवासन में ध्यान कर सकते हैं? मुझे यह सुविधाजनक लगता है।

उत्तर : नहीं। अधिकतर लोगों के लिए तो बैठते हुए ध्यान करना ही नींद को आमन्त्रण देना है। सोते हुए ध्यान की क्या कहें !

प्रश्न : कुछ लोग कहते हैं कि ध्यान विचारों से मुक्त होना है। वह क्या है जो विचारों को जन्म देता है। इन विचारों को कैसे कम किया जा सकता है?

प्रश्न : मन का अर्थ ही है विचारों का प्रवाह। मन एक क्षण के लिए भी चुप नहीं बैठ सकता। केवल समाधि में ही ये विचार पूरी तरह से शान्त हो जाते हैं। इस अवस्था में मानो मन का अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है। लेकिन हमें ध्यान में किसी एक विचार के प्रवाह को बनाये रखना चाहिए।

प्रश्न : विचार कहाँ से जन्म लेते हैं?

उत्तर : वे हमारी इन्द्रियों के द्वारा जैसे आँख, कान, स्पर्श के द्वारा बहिर्जगत के घात-प्रतिघात या अवचेतन मन में संचित पूर्व संस्कारों के सक्रिय होने से पैदा होते हैं। जब हम एकान्त में ध्यान के लिए बैठते हैं, तो इन्द्रियों का बहिर्जगत से सम्पर्क तो टूट जाता है, लेकिन अवचेतन मन से विचार सतत आते रहते हैं। इसलिए बड़े धैर्य और श्रद्धा के साथ अभ्यास करते रहना चाहिए।

प्रश्न : मन के कुछ शान्त होने के बाद भी मानो एक आवाज आती रहती है। यह मन को बहुत बाधित करती है। इस ध्वनि को कैसे बंद करें?

उत्तर : यह आवाज कुछ नहीं; मन की चंचलता ही है। मन का यह शोरगुल यह इंगित करता है कि अभी मन पूरी तरह तैयार नहीं है। एकाग्रता घनी होने पर केवल ध्येय वस्तु ही मन को पूर्णतया आवृत्त कर लेगी। तब कोई मानसिक आवाज या ध्वनि नहीं होगी। उत्साह के साथ सतत अभ्यास और दृढ़ निश्चय ही इस समस्या का निवारण है।

प्रश्न : व्याधि भी आध्यात्मिक जीवन में एक बाधा है। इसे कैसे दूर करें?

उत्तर : स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ नियम पालन करो। जब तुम बीमार पड़ो, तब चिकित्सक से परामर्श लो। इसके साथ ही तुम्हें बीमारियों से भी बचना चाहिए। शरीर के प्रति सचेतन रहने से और शरीर तथा आत्मा पृथक है, ऐसे विवेक से व्याधियों की समस्या दूर हो सकती है। अपने को शरीर से पृथक सोचने का प्रयास करो। देह-बोध जितना कम होगा, तुम व्याधियों से उतने ही अविचलित रह सकोगे।

○○○ (समाप्त)

रामगीता (४/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

प्रसंग मैं जिधर नहीं चाहता था, उधर चला गया है। मेरे वश में नहीं होता, वह जिधर चाहता है, उधर का हो जाता है। मनु और सतरूपा के सन्दर्भ में भी बड़ा सुन्दर संकेत है। मनु और सतरूपा भी दर्शन चाहते हैं, पर जो दर्शन होता है, उन पर उनकी श्रद्धा नहीं होती। ब्रह्मा ब्रह्मलोक से आए, विष्णु बैकुण्ठ से आए, शंकरजी कैलाश से आए। मनु ने प्रणाम किया। बोले, मैं आप लोगों से कुछ नहीं चाहता। उसके बाद –

बिधि हरि हर तप देखि अपारा।
मनु समीप आए बहु बारा।
मागहु बर बहु भाँति लोभाए।
परम धीर नहिं चलहिं चलाए।। १/१४४/२-३

उसके बाद जो प्रसंग आता है, श्रीराम आए। साधारणत: वह शब्द वैष्णव-परम्परा में साकेत के रूप में कहा जाता है। वैष्णव परम्परा में विष्णु के अवतार के रूप में बैकुण्ठ कहा जाता है, पर रामचरित मानस में इन दोनों शब्दों का प्रयोग नहीं है। साकेत से आए, यह भी नहीं कहा गया, बैकुण्ठ से आए, ऐसा भी नहीं कहा गया। क्या कहा? आकाशवाणी हुई और उसे सुनकर मनु ने जब यह कहा कि मैं आपको देखना चाहता हूँ। पहले ब्रह्म का शब्दमय अनुभव, बाद में रूप की आकांक्षा, तो उस समय तुरन्त यह प्रश्न आया कि ये समस्त दिव्य रूप, जो अपने-अपने लोकों से आए, तो राम कहाँ से आए? किस लोक से आए? तो कह सकते हैं कि बैकुण्ठ से या साकेत लोक से आए। मैं विनम्र शब्द में कहूँगा, बिल्कुल आप उसका उलटा अर्थ न ले लीजिएगा। गोस्वामीजी स्पष्ट कह देते हैं। जो जिस लोक में मानते हैं, वह बिल्कुल ठीक है। **जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती। (१/१८४/३)**।

वे तो सर्वव्यापी हैं। जिसके हृदय में जैसी धारणा है, जैसी भक्ति है, उसके लिये प्रभु वहाँ प्रगट हैं। अगर साकेत लोक से आए कहें, तो बिल्कुल ठीक है, बैकुण्ठ से आए तो भी ठीक है। लेकिन उन्होंने कहा कि साकेत, बैकुण्ठ के स्थान पर एक दूसरी बात भी तो है। वह क्या है? –

भगत बछल प्रभु कृपानिधाना।

कहाँ से आए? बोले, कहीं से नहीं आए। तब?

बिस्वबास प्रगटे भगवाना।। १/१४५/८

वे तो सर्वव्यापी थे, वहीं थे। होते हुए भी अब तक नहीं दिखाई दे रहे थे, पर अब दिखाई देने लगे। समस्या उसकी नहीं है, समस्या हमारे-आपके आँख की है। हमारी आँख की अपनी सीमा है। असीम को देखने के लिए जो दृष्टि चाहिए, वह ससीम है। ऐसी स्थिति में अब दृष्टि की माँग अलग है। हमारी दृष्टि असीम ब्रह्म को देख नहीं सकती, वह ससीम रूप में देखना चाहती है, तो वे स्वयं को ससीम रूप में प्रगट कर देते हैं। पर माँग तो बढ़ती गई। दिव्य है, तो पुत्र के रूप में चाहिये। प्रभु ने बड़ा सांकेतिक शब्द कहा – आपकी जो इच्छा है, उसे मैं पूरी करूँगा। एक शब्द और जोड़ दिया। क्या? यह मेरे वाम भाग में जो खड़ी हैं, ये भी आयेंगी। निमन्त्रण एक को दिया गया है, तो दो को आने की क्या आवश्यकता है? कह देते, मैं आऊँगा। बोले इनके आए बिना तो मेरा खेल हो नहीं सकता। जादूगर तो जादू के द्वारा ही सारा जादू दिखाता है। भगवान ने कहा कि आप जो कुछ भी कह रहे हैं, वह बिना माया के सहारा

के हो नहीं सकता। इसलिए मेरे साथ माया भी आयेंगी –

आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया।

सोउ अवतरिहि मोरि यह माया।। १/१५१/४

जो आप चाहते हैं, वह माया शक्ति के आश्रय से ही सम्भव है। इसीलिए रामायण में यह शब्द आता है श्रीराम 'माया मनुष्यं हरिम्' हैं। 'माया मनुष्यं हरिम्' का अभिप्राय, उसकी विलक्षणता भक्त की भावना को पूर्ण करने के लिए मायाशक्ति का आश्रय लेना है। वास्तव में भगवान के आने का अर्थ यह नहीं है कि वे काल के भीतर आ गये। काल के भीतर नहीं, वे तो कालातीत हैं। जब यह कहा गया कि सूर्य रूक गया, तो यह बताने के लिये कि ईश्वर कालातीत है। जन्म से ही, जहाँ जीवन प्रारम्भ होता है, चैत्र मास, नौमी तिथि, मध्यदिवस, अभिजित नक्षत्र लगता है कि काल की सीमा में आ गये, पर नहीं, लीला के प्रारम्भ में ही उन्होंने संकेत कर दिया कि वहाँ काल की कोई गति नहीं है। वे काल में नहीं, अपितु काल ही उनमें है। उनकी इच्छा से ही काल है और काल की गति है। सूर्य आदि जितने हैं, वे सब कालचक्र के अधीन हैं। उसका कब उदय होगा, कब अस्त होगा, सब सुनिश्चित है। ज्ञात है परब्रह्म तो कालातीत है। कालातीत जो ब्रह्म है, वह अपने भक्तों को आनन्दित करने के लिये अपने आपको काल में व्यक्त कर देता है। अव्यक्त होते हुए भी वह प्रकट हो जाता है।

कौशल्या अम्बा ने जब देखा, तो वे तो आश्चर्यचकित हो गईं। श्रीराम अगर एक बालक के रूप में सामने आते, तो कोई बात नहीं थी। जन्म लेता है बालक, माँ उठा ले, या आसपास में जो महिला हो, वह उठा ले। पर कौशल्याजी के सामने जो बालक प्रगट हुआ, अब वहाँ एक दृष्टि गोस्वामीजी देते हैं –

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।

हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी।।

१/१९१/छ.

अद्‌भुत रूप था ! आश्चर्य हुआ। क्या? बोले –

भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी।।

अब उसे चतुर्भुज चाहे द्विभुज कह लीजिए, वे प्रकट हुए। उनके गले में वनमाला है, मणिरत्नों की माला है। अब कौशल्या अम्बा के मन में एक आश्चर्य हुआ। वह आश्चर्य ही मानो व्यक्ति को प्रेरित करता है। कौशल्या अम्बा आनन्द तो ले ही रहीं हैं, उन्हीं के पुत्र बने हैं, पर आश्चर्य से कहती हैं –

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।

मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।।

जिस ब्रह्म के एक-एक रोम में न जाने कितने अनगिनत ब्रह्माण्ड हैं, वह मेरे गर्भ में आ गया, यह तो बुद्धि से समझ में आनेवाली बात नहीं है। इसमें संकेत यह था, जिसका सूत्र बता दिया गया था। भक्तों की एक भावना, भक्तों का आनन्द और रस लेने की वह एक वृत्ति है। आपने एक तिथि-विशेष को धन्य बना दिया। वह रामनवमी की तिथि आती है, तो सारे देश में कितना आनन्द होता है ! उसके साथ-साथ मैं वह बात भूल नहीं पाता, पंचागों में आपने देखा होगा, एक ही तिथि कभी दो दिन, एक वैष्णवों के मतानुसार तो दूसरा स्मार्त या अन्य किसी मत से हो जाती है। प्रतिवर्ष मैं रामनवमी में दिल्ली में रहता हूँ। किसी ने कहा कि पण्डितों ने बहुत प्रयत्न करके भी यह निर्णय नहीं कर पाया कि रामनौमि आज है, कल है या परसों। तीनों छपा चला जा रहा है। मैंने कहा कि आपको अधिक उलझन में नहीं पड़ना चाहिए। तीन दिन रामनौमी से आप क्यों परेशान हो रहे हैं? तीस दिन तक रथ रुका रहा, तो तीस दिन तक तो राम नवमी थी ही। जब तीस रामनौमी थी, तो तीन दिन क्या? कुछ दिन और बढ़ा दीजिए कि रामनवमी तीस दिन की हो जाये। वह तो अच्छा ही हुआ कि रामनौमी एक ही दिन की होती है। तीस दिन की पड़े, तब तो आप संकट में पड़ जाएँगे। आपको तो एक दिन के लिए थोड़ा सा जाना और भोग लगाना, उत्सव मनाना अच्छा लगता है, पर नित्य करने में आप सक्षम नहीं हैं। इसीलिए ईश्वर हमारी-आपकी सीमाओं को समझकर ही हमारे लिए एक दिन या तीन दिन के लिए ही अपने को व्यक्त करते हैं। वे तो नित्य हैं, आज भी हैं, अव्यक्त हैं। लेकिन आगे क्या हुआ?

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।

सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद।।

१/१९८/०

जब व्यापक ब्रह्म निरंजन ने अपना रूप दिखाया। पर माँ ने कहा, बुद्धि तो स्थिर नहीं है। ईश्वर ने स्मरण दिलाया, आपने मुझसे माँगा, मैंने आपकी इच्छा पूरी कर दी, अब आगे बताइए, आगे क्या करना है? तो माँ भी बड़ी बुद्धिमती थीं, उन्होंने कहा – **कीजै सिसु लीला**। अब जब पुत्र बन ही गये, तो पुत्र जैसी लीला भी तो कीजिए। यह विशाल

रूप तो लोगों को चौंका देगा। तब भगवान ने क्या किया?

सुनि बचन सुजाना, रोदन ठाना।

भगवान जोर-जोर से रोने लगे। इसको लिखने की क्या आवश्यकता थी। संसार में बालक जन्म लेता है, तो रोता ही है। तो क्या ईश्वर भी जन्म लेने के बाद रोता है? नहीं, वह रोने की लीला करता है। नाटक में रोने में आनन्द आता है और सचमुच रोने में दुख होता है। नाटक में अभिनेता रोता है और उसे रोते देखकर सब रोने लगते हैं। लेकिन अब दर्शकों को रोते देखकर अभिनेता बहुत प्रसन्न होता है कि इतना बढ़िया मैंने अभिनय किया कि सबको रूला दिया। वह आनन्दित हो रहा है। यह एक लीला है, इसलिए लीला शब्द बार-बार जोड़ा गया है। इसका अभिप्राय है कि जो कालातीत, देशातीत, सर्वव्यापक ब्रह्म है, वह अपने भक्तों की भावना को पूर्ण करने के लिए प्रकट होता है। हमारी दृष्टि ससीम है, हमारी क्षमताएँ ससीम हैं, इसलिए वह ससीम रूप में ही हमें दर्शन देता है। इस ज्ञेय ब्रह्म को जान लेने के बाद भगवान राम के बाल-लीलाओं का क्या कहना ! आप कवितावली रामायण पढ़ें, तो बालक बनकर श्रीराम कितना रस देते हैं, आनन्द देते हैं।

कबहूँ ससि मागत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइकै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेसके बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिरमें बिहरैं।
कवितावली रामायण (४)

श्रीराम खिलौने के लिए, चन्द्रमा के लिए मचल पड़ते हैं। विलम्ब होने पर नाराज हो जाते हैं, स्वयं ताली बजाकर आँगन में नाचने लग जाते हैं। यह बाल-लीला का एक रस है, पर अचानक गोस्वामीजी आपको फिर याद दिला देते हैं। आनन्द तो आपने ले लिया, पर उस आनन्द के क्षण में अचानक एक घटना घट जाती है। माँ बड़ी आस्तिक श्रद्धामयी हैं, पूजन करती हैं। बालक राम को पालने पर सुलाकर वे पूजन के कक्ष में गयीं। नैवेद्य भगवान को अर्पित कर दिया। अब मन्दिर तो एक देश में ही होगा, छोटा-सा होगा। नैवेद्य में आप भगवान को पूड़ी, हलुवा, मालपुवा, जो भी अर्पित करें। माँ ने तो बहुत प्रकार के पकवान अर्पित किये। लेकिन जब उन्होंने थोड़ी देर बाद परदे को उठाकर देखा, तो देखते ही वे चकित हो गईं कि जिस अपने बालक को उन्होंने पालने में सुला दिया था, वही वहाँ पर भोग लगा रहा है। माँ बड़ी चकित हो गईं, माँ ने कहा यह क्या हुआ? वे डर-सी गईं, नैवेद्य को जूठा कर दिया। अब उन्हें उस ईश्वरत्व का तो विस्मरण हो गया। उसको तो बाल-लीला के आनन्द ने भुला दिया है। तब उन्होंने सोचा, इतना छोटा बालक, वह तो पालने से उतरकर आ नहीं सकता, इसे तो मैं अभी पालने में सुला आई थी। वहाँ जाकर जरा देखूँ! जाकर देखा, तो बालक ज्यों का त्यों सोया हुआ है। फिर माँ पूजागृह में आईं, तो देखा कि बालक भोग लगा रहा है –

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा।
मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा।। १/२००/७

यहाँ एक शब्द बड़े महत्त्व का है, वह है अखंड। माँ सोचती हैं, क्या हो गया, मेरे मस्तिष्क को कोई भ्रम हो गया? भगवान ने जब देखा कि माँ बहुत व्याकुल हो रही हैं, तब –

देखरावा मातहि निज अद्‌भुत रूप अखंड। १/२०१/०

यहाँ अखण्ड शब्द पकड़ने योग्य है। जब मन्दिर बनेगा, मूर्ति के रूप में या प्रत्यक्ष रूप में, तो वह एक देश में बनेगा। भूमि के एक खण्ड में ही तो मन्दिर बनता है। यहाँ वह एक बालक के रूप में है और भोग भी लगा रहा है। किन्तु भगवान ने अखण्ड रूप का दर्शन कराया। उसमें उन्होंने देखा –

अगनित रबि ससि सिव चतुरानन।
बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन।
काल कर्म गुन ग्यान सुभाउ।
सोउ देख जो सुना न काऊ।।
देखी माया सब बिधि गाढ़ी।
अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी।। १/२०१/१-३
अस्तुति करि न जाइ भय माना।
जगत पिता मैं सुत करि जाना।। १/२०१/७

(क्रमशः)

जब कभी भी मन में दुर्बलता या अवसाद का उदय हो, इस श्लोक को बार-बार पढ़ने लगो –

अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्त-स्वभाववान्।।

मैं देवता हूँ, अन्य कुछ नहीं; मैं साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हूँ, शोक मुझे स्पर्श भी नहीं कर सकता। मैं सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्यमुक्त-स्वभाव हूँ। ॐ तत् सत् ॐ ।

– स्वामी विरजानन्द जी महाराज

रानी गुंडिचा का अलौकिक प्रेम

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, भगवान श्रीजगन्नाथ जी की रथ-यात्रा के बारे में तो हम सभी जानते ही हैं कि वे अपने बड़े भाई बलभद्र और बहन सुभद्रा के साथ तीन भिन्न रथों में बैठकर भक्तों के संग नगर भ्रमण करते हुए यात्रा आरम्भ करते हैं और अंत में गुंडिचा माता के मन्दिर यानी अपनी मौसी के घर जाकर समाप्त करते हैं।

पौराणिक कथाओं के अनुसार गुंडिचा को भगवान जगन्नाथ का जन्म-स्थान भी कहा जाता है। क्योंकि यही वह स्थान है, जहाँ महादेवी नामक एक विशेष मंच पर दिव्य शिल्पकार विश्वकर्मा ने राजा इन्द्रद्युम्न की इच्छा पर प्रभु जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा के विग्रहों को प्रकट किया था। राजा इन्द्रद्युम्न की पत्नी का नाम महारानी गुंडिचा था। जगन्नाथजी के विग्रह प्रकट होने के बाद यहाँ अश्वमेध यज्ञ किया गया था। इसलिए कहा जाता है कि जगन्नाथ-रथ-यात्रा के दर्शन करना १००० अश्वमेध यज्ञ के बराबर होता है।

रानी गुंडिचा ने दरवाजा खोलने की हठ की। अन्त में दरवाजा खोला गया, तो बूढ़े बढ़ई के रूप में भगवान विश्वकर्मा तीन अधूरी मूर्तियों को छोड़कर अन्तर्धान हो गये। सारी रात राजा और रानी भगवान से मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना करते रहे। अपने प्रिय भक्त की ऐसी दयनीय स्थिति देखकर भगवान उनके सामने प्रकट हुए। उन्होंने पूछा – ''प्रिय इन्द्रदेव, तुम इतना विलाप क्यों कर रहे हो? मेरी इच्छा है कि मेरी पूजा इसी मूर्ति में हो। मुझे या मेरे भाई-बहनों को अधूरा मत समझो। क्या तुम यह जानते हो कि मैंने तुम्हें जो वास्तुकार दिया था, वह कौन था? वह स्वयं भगवान विश्वकर्मा थे। हे राजन्! मेरी मूर्ति तुरन्त स्थापित करो। मैं यह भी घोषणा करने आया हूँ कि पुरी में तुम जो मन्दिर-निर्माण कराओगो वह संसार के सबसे पवित्र स्थानों में से एक होगा। यह चार धामों में से एक सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान होगा। इस मन्दिर में मेरी सबसे बड़ी सम्पत्ति मेरा हृदय निवास करेगा। मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति और प्रेम के कारण तुमको सदा मेरी उपस्थिति का अनुभव होगा। तुमको भोजन और धन की कमी नहीं होगी। क्योंकि मेरी देवी भी वहाँ निवास करेंगी। यह मन्दिर पृथ्वी पर निवास करने के लिए सबसे मनभावन स्थलों में से एक होगा। अब, हे राजन्! मुझे बताओ कि तुम मुझसे क्या चाहते हो? यह सुनकर राजा और रानी स्तम्भित रह गये। राजा ने कहा – हे प्रभु, मैं आपसे और क्या माँगूँ, जब इस ब्राह्मण के स्वामी जगन्नाथ मेरे घर पर हैं। लेकिन हे प्रभु, अगर आप चाहें, तो मेरा कोई वंशज न हो, क्योंकि देर-सबेर वे अपनी सम्पत्ति समझकर मन्दिर पर अधिकार कर लेंगे और उस पर शासन करने लग जायेंगे। मैं चाहता हूँ कि आप जगन्नाथ बने। केवल मेरे ही नहीं सभी के भगवान बनें।

यह सुनकर रानी गुंडिचा बहुत दुखी हुई। वह राजा पर क्रोधित हो गई। उसने भगवान से कहा – ''प्रभु, यदि हमारी कोई संतान नहीं होगी, तो भविष्य में हमारा परिवार कैसे चलेगा? इस भूमि और इस पर रहने वाले लोगों पर शासन नहीं होगा। राजा के बिना राज्य कैसे चलेगा? जब हम बूढ़े हो जायेंगे, तब हमारी देखभाल कौन करेगा? जब हम बीमार होंगे, तो हमसे मिलने कौन आयेगा?''

भगवान ने कहा – हे माँ, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं और मेरे भाई-बहन आपके बेटे और बेटी होंगे। राजा की मृत्यु के बाद मैं राज्य पर शासन करूँगा। राज्य में अन्न और धन की कोई कमी नहीं होगी। यहाँ रहनेवाले लोग सदा आध्यात्मिक आनन्द और उल्लास में रहेंगे। मैं आपका और राजा का ध्यान रखूँगा। हम प्रतिवर्ष ७ दिन के लिये आपसे मिलने आपके घर आयेंगे। माँ, हमारे लिए स्वादिष्ट भोजन बनाना और हम सभी को अपने बाँहों में भरकर प्यार करना। जैसे आप अपने बच्चों से करतीं।

माँ, क्या मैं आपके लिए कुछ और कर सकता हूँ? यह सुनकर गुंडिचा देवी का हृदय पिघल गया। इसलिए प्रत्येक वर्ष रथयात्रा का आयोजन किया जाता है। जिसमें त्रिमूर्ति पुरी शहर के बरडांड पर स्थित गुंडिचा मन्दिर तक

शेष भाग पृष्ठ ३११ पर

गुरु-पूर्णिमा विशेष

भारतीय संस्कृति में गुरु-परम्परा

डॉ. जया सिंह, रायपुर

गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर मारैं चोट।।

एक सच्चा गुरु कोई साधारण आध्यात्मिक शिक्षक नहीं है, बल्कि वह है, जिसने अनन्त ब्रह्म के साथ पूर्ण तादाम्त्य स्थापित कर लिया है। इसलिए वह दूसरों को उसी आनन्दमय लक्ष्य तक ले जाने के योग्य है। संस्कृत-ग्रंथों में गुरु को 'गु'-अन्धकार और 'रु'- मिटाने वाला, अन्धकार को मिटाने वाला कहा जाता है। गुरु की सार्वभौमिक चेतना के प्रकाश में अज्ञानता का अन्धकार दूर हो जाता है।

परमहंस योगानन्द जी ने गुरु-शिष्य परम्परा में गुरु-शिष्य सम्बन्ध को एक बहुत ही व्यक्तिगत एवं निजी आध्यात्मिक सम्बन्ध – अर्थात् शिष्य के द्वारा निष्ठावान आध्यात्मिक प्रयास और गुरु के दिव्य आशीर्वाद का मिलन बताया है।

भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य की परम्परा अति प्राचीन है। प्राचीन काल से गुरुभक्ति की महान मर्यादा रही है। गुरु अपना सम्पूर्ण ज्ञान शिष्य को सौंप देते हैं और उसे भूत, वर्तमान और भविष्य से परिचय करवाते हैं। भारत में सदा ही गुरु की महिमा गाई जाती रही है। गीता में कहा गया है कि जीवन को सुन्दर बनाना, निष्काम और निर्दोष करना ही सबसे बड़ी विद्या है। इस विद्या को सिखाने वाला ही सद्गुरु कहलाता है। स्वामी विवेकानन्द जी ने भी कहा है कि सद्गुरु वही है, जिसे गुरु-परम्परा से आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हुई है। वह शिष्य के दोषों को स्वयं अपने ऊपर ले लेता है।

वैदिक काल में गुरु और शिष्यों के बीच बहुत मधुर सम्बन्ध थे। गुरु शिष्यों को पुत्रवत मानते थे और शिष्य गुरुओं को पिता तुल्य मानते थे। ऊपर से प्रेम बरसता था, और नीचे से श्रद्धा उमड़ती थी। वैदिक काल में गुरुकुलों की व्यवस्था गुरु और शिष्य; दोनों संयुक्त रूप से करते थे। यह व्यवस्था कार्य-विभाजन द्वारा बहुत सुचारु रूप से होती थी।

प्रत्येक आत्मा का पूर्ण होना नियति है और प्रत्येक प्राणी अन्त में पूर्णता की अवस्था को प्राप्त करेगा। भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य-परम्परा का सर्वोच्च स्थान है। परम्परा शब्द का शाब्दिक अर्थ है – 'बिना व्यवधान के शृंखला रूप में जारी रहना'। परम्परा प्रणाली में किसी विषय या उपविषय का ज्ञान बिना किसी परिवर्तन के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ियों में संचारित होता रहता है। यास्क ने स्वयं परम्परा की प्रशंसा करते हुए कहा है – **अयं मन्त्रार्थः चिन्ताभ्यूहोऽपि श्रुतितोऽपि तर्कतः।।** अर्थात् मन्त्रार्थ का विचार परम्परागत अर्थ के श्रवण अथवा तर्क से निरुपित होता है, क्योंकि – **न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः प्रकरणश एव निर्वक्तव्याः**। – मन्त्रों की व्याख्या पृथक् हो नहीं सकती, अपितु प्रकरण के अनुसार ही हो सकती है। **न ह्येषु प्रत्यक्षमस्ति अनृषेरतपसो वा।।**

वेदों का अर्थ किसके द्वारा सम्भव है? इस विषय पर यास्क का कथन है कि – मानव न तो ऋषि होते हैं, न तपस्वी इसीलिए मन्त्रार्थ का साक्षात्कार कर नहीं सकते।

भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत गुरु अपने शिष्य को विद्या सिखाता है, ज्ञान देता है। बाद में वही शिष्य गुरु के रूप में दूसरों को शिक्षा देता है। यही क्रम चलता जाता है। यह परम्परा सनातन धर्म की सभी धाराओं में मिलती है। हमारी संस्कृति में गुरु का बहुत महत्त्व है। कहीं गुरु को 'ब्रह्मा-विष्णु-महेश' कहा गया है, तो कहीं 'गोविन्द'। 'सिख' शब्द संस्कृत के 'शिष्य' से व्युत्पन्न है। गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर माना गया है –

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

प्राचीन काल में गुरु-शिष्य सम्बन्धों का आधार था गुरु का ज्ञान, मौलिकता, नैतिक बल, उनका शिष्यों के प्रति स्नेहभाव तथा ज्ञान बाँटने का नि:स्वार्थ भाव। गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा, गुरु की क्षमता में पूर्ण विश्वास, गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण, आज्ञाकारिता, अनुशासन शिष्य का महत्त्वपूर्ण गुण माना जाता था।

आचार्य चाणक्य आदर्श शिष्य के गुण इस प्रकार बताते हैं –

काकचेष्टा बको ध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पंच लक्षणम्।।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने गुरु-परम्परा को 'परम्परा-प्राप्तम' योग बताया है। गुरु-शिष्य-परम्परा का आधार सांसारिक ज्ञान से आरम्भ होता है, परन्तु इसका चरमोत्कर्ष आध्यात्मिक शाश्वत आनन्द की प्राप्ति है, जिसे ईश्वर-प्राप्ति व मोक्ष-प्राप्ति भी कहा जाता है।

गुरु के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण कहते हैं – 'गुरु मानो गंगाजी हैं। गुरु मानो मध्यस्थ हैं। जैसे मध्यस्थ दो प्रेमानुरागियों को मिला देता है, वैसे ही गुरु भी साधक को इष्ट से मिला देते हैं। गुरु में मनुष्य-बुद्धि नहीं रखनी चाहिये। इष्ट-दर्शन होने के पहले शिष्य को प्रथम गुरु के दर्शन होते हैं तथा स्वयं धीरे-धीरे उस इष्टरूप में विलीन हो जाते हैं। तब शिष्य गुरु तथा इष्ट को अभिन्न, एकरूप देखता है। इस अवस्था में शिष्य जो वर माँगता है, गुरु उसे वही देते हैं। यहाँ तक कि गुरुदेव उसे सर्वोच्च निर्वाण की अवस्था तक दे सकते हैं।' (अमृतवाणी पृ.१६४)

वस्तुत: गुरु-शिष्य-परम्परा भारतीय संस्कृति की अनूठी पहचान है। गुरु-परम्परा गुरुओं के निर्बाध उत्तराधिकारी को सन्दर्भित करती है। ऐसे ही अनेक गुरु-शिष्य-परम्परा के उदाहरण हमारी संस्कृति, साहित्य और धार्मिक ग्रन्थों में बताए गए हैं। गुरु-शिष्य-परम्परा का उदाहरण परशुराम और कर्ण हैं। कर्ण ने परशुरामजी से शिक्षा ली थी।

द्रोणाचार्य केवल अर्जुन के गुरु नहीं, बल्कि एकलव्य के भी गुरु थे। द्रोणाचार्य के शिष्य न बनाने पर एकलव्य ने मिट्टी की उनकी मूर्ति बनाई और उस पर ध्यान केन्द्रित किया और प्रेरणा लेकर धनुर्विद्या सीखी। एक बार द्रोणाचार्य के पूछने पर कि धनुर्विद्या कहाँ से सीखी, तो एकलव्य ने जब उनकी ओर संकेत किया, तब द्रोणाचार्य ने एकलव्य से गुरु-दक्षिणा के रूप में उसका अँगूठा माँगा। बिना विचारे एकलव्य ने अपना अँगूठा काटकर गुरुदेव को अर्पित कर दिया।

गोस्वामी तुलसीदास जी गुरु के सम्बन्ध में कहते हैं –

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू।।

– गुरुदेव के चरण-कमलों की रज की मैं वन्दना करता हूँ, जो सुरुचि (सुन्दर स्वाद), सुगन्ध तथा अनुराग रूपी रस से पूर्ण है। वह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुंदर चूर्ण है, जो सम्पूर्ण भव-रोग के परिवार का नाशक है।

वस्तुत: गुरु के बिना ज्ञान-लाभ असम्भव है। गुरु अपने शिष्यों को शास्त्रीय और अनुभवजन्य दोनों ही प्रकार के ज्ञान प्रदान करते हैं। गुरु-महिमा को स्वीकार करनेवाले लोगों के लिए गुरु के शब्द तो महत्त्वपूर्ण होते ही हैं, इसके साथ ही उनके भाव की प्रधानता अधिक होती है। कृष्ण गोकुल में गैया चरानेवाले एक ग्वाले थे, जिसे सदीपनि ऋषि ने वेद-उपनिषदों का ज्ञान देकर एक युगपुरुष बना दिया। द्रोणाचार्य के शिष्य कौरव और पाण्डव थे। वे उन्हें अस्त्र-शस्त्र और युद्धकला का अभ्यास कराते थे। द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य अर्जुन थे। द्रोणाचार्य ने अर्जुन को विश्व का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाया। मगध के राजा महानन्द (घनानन्द) से अपमानित चाणक्य ने अपनी शिखा खोलकर यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक वह नन्दवंश का नाश नहीं कर देगा, तब तक वह अपनी शिखा नहीं बाँधेगा। चन्द्रगुप्त के रूप में एक ऐसा होनहार शिष्य उन्हें मिला था, जिसे उन्होंने युद्धकला में पारंगत कर अपने अपमान का बदला लिया। चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने अखण्ड भारत की स्थापना की।

श्रीरामकृष्ण परमहंस के प्रदत्त ज्ञान के कारण ही स्वामी विवेकानन्द भारत के पुनरुत्थानकर्ता, विश्व-उद्धारक और युगनायक बने। रामकृष्ण परमहंस को एक ऐसा शिष्य मिला, जिसने परतन्त्र भारत को 'विश्वगुरु' का पद दिलाया। स्वामी रामदास समर्थ संन्यासी थे। अपनी तीर्थ यात्रा के दौरान उन्होंने जनता की जो दुर्दशा देखी, उससे उनका हृदय संतप्त हो उठा। जनता को आततायी शासकों के अत्याचारों से मुक्ति दिलाने के लिए उन्होंने शिवाजी को चुना और उन्हें हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना के लिए प्रेरित किया। अपने गुरु के मार्गदर्शन में शिवाजी एक छत्रप से छत्रपति शिवाजी महाराज बन गए।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं, जिसमें सन्तत्व है, वही सन्त है। ईश्वर ने अपनी बातों को लोगों को समझाने के लिये, उन्हें सन्मार्ग दिखाने के लिये, व्यक्ति का विकास कैसे हो, उसके चिन्तन, शरीर, धन, ज्ञान का विकास कैसे हो, उसके लिये एक प्रतिनिधि परम्परा का प्रारम्भ किया, यही सन्त अथवा गुरु-परम्परा है।

सन्तों के जीवन और क्रिया-कलाप ईश्वर की भावनाओं, ईश्वरावतार के उद्देश्य, ईश्वरीय विचारों और गुणों से संयुक्त होते हैं। वे सदा ईश्वर-चिन्तन ही करते हैं। सन्तों के जीवन से समाज की यही अपेक्षा रहती है कि सन्त निर्लोभी और निष्काम होंगे और ईश्वर की ओर समाज को अग्रसर करेंगे।

शिष्य का उत्तरदायित्व गुरु के प्रति श्रद्धा और विनम्रता से जुड़ा होता है। वह गुरु के आदेशों का पालन कर गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करता है और आत्मविकास और लोकहित करता है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध केवल शैक्षिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और जीवनदृष्टि का भी सम्बन्ध है। इस पावन सम्बन्ध में विश्वास, सम्मान और समर्पण का तत्त्व बहुत महत्त्वपूर्ण है। परम्पराओं, संस्कारों और विचारधाराओं को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने में इस सम्बन्ध की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

गुरु-शिष्य परम्परा ने भारतीय समाज में शिक्षा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान सुनिश्चित किया है। इसमें केवल बौद्धिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा भी दी जाती रही है। यह परम्परा भारतीय जीवन के नैतिक और धार्मिक मूल्यों के संरक्षण और प्रचार में सहायक रही है। आजकल तकनीकी और डिजिटल शिक्षा के बावजूद गुरु-शिष्य परम्परा का महत्त्व बना हुआ है।

गुरु केवल ज्ञान देनेवाले ही नहीं, बल्कि वे शिष्य को जीवन के संघर्षों से निपटने के लिये मानसिक और नैतिक शक्ति भी प्रदान करते हैं। शिष्य के जीवन में गुरु की भूमिका हमेशा मार्गदर्शक की होती है। गुरु-शिष्य परम्परा न केवल ज्ञान की प्राप्ति का माध्यम है, बल्कि यह समाज में संस्कार और नैतिकता का प्रसार भी करती है। यह परम्परा हमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सन्मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करती है। तभी तो कहा गया है –

गुरुं विना भाति न चैव शिष्य:
शमेन विद्या नगरी जनेन। ○○○

श्रीरामकृष्ण-स्तुति-३

(तर्ज – भए प्रगट कृपाला, दीनदयाला...)

रामकुमार गौड़, वाराणसी

हे विमल हंस, जग परमहंस, के नाम कीर्ति तव भारी ।
करि श्री छवि दर्शन, चरण-स्पर्शन, रहते भक्त सुखारी ।
बहुभाव-सिन्धु, जग-दीनबन्धु, हे भक्तन-मतिमल हारी ।
हे मातृभावधर! कृपा दास पर, करो मान मदहारी ।।२१।।

जय जगन्निवासा, भव-भय-नाशा, करन हेतु जग आयो ।
रहि अति साधारन, दीन उधारन, करुणा-रूप छिपायो।
जो गत अभिमाना, भव-परेशाना दीन सरन में आयो ।
जपि पावननामा, हो गत-कामा, शुभ दर्शन तव पायो ।२२।।

तव पावननामा, सुनि विश्रामा, पावै नर संसारी ।
नित तव गुणगाना, करि जन नाना, शुद्ध होहिं अविकारी ।
करि लीला चिन्तन, रहै मुदित मन, उर धरि श्रीछवि न्यारी ।
हे लीलावपुधर, कृपा दास पर, करो अमित अघहारी ।।२३।।

जय जय सुखधामा, अर्पित श्यामा, तन-मन-अखिलाचारा।
करि आद्याशक्ती, शुद्धाभक्ती, विरहित-तर्कविचारा ।
अनुपम हरिनिष्ठा, विगत प्रतिष्ठा, भक्तन को सिखलायो ।
हे चिन्मय तनुधर! कृपा दास पर, करो शरण मैं आयो ।।२४।।

जय सदानन्दमय, अनुपम अक्षय, ब्रह्मतत्त्व-विज्ञानी।
मानस दृढ़निश्चय, गतभयसंशय, तन्मय, ईश्वर-ज्ञानी।
जो शरणागत-हित, करत कृपा नित, चिदानन्द-वरदानी ।
सो प्रभु चितचोरा, भाव-विभोरा, देहु भक्ति सुखखानी ।।२५।

जय जय त्यागीश्वर, भावाधीश्वर, तदाकार-माँ काली ।
नित भजन-भावमय, हरिगुण-तन्मय, कीर्तन कर दे ताली।
जो सतत अशीषा, देत गिरीशा, सहत भक्त की गाली।
सो प्रभु करुणामय! करो पापक्षय, हरो कुबुद्धि-कुचाली ।।२६।।

जो परम प्रसन्ना, स्वल्प न खिन्ना, देखि व्याधिमय काया ।
जगमाता-इच्छा, जानि तितिक्षा, करि भक्तन समझाया ।
मन भजनानन्दा, रहि स्वच्छन्दा, भाव-भक्तितरु छाया ।
जो गत सन्देहा, परम विदेहा, सो प्रभु हृदय समाया ।।२७।।

जय कृपानिधाना, कीर्तनगाना, कियो अमित सुखदाई ।
नित सायं-प्राता, विश्वविधाता, भजन करत मन लाई ।
नित देव-प्रणामा, करि सुखधामा, चरण-प्रीति सिखलाई।
जो हरिगुन-गावत, अति सुखपावत, बसो सो मम उर आई।।२८।।

भजन एवं कविता

निष्काम कृपा के सागर श्रीगुरुदेव

चन्द्रमोहन, नई दिल्ली

प्रियतम थे तुम जन्मों के,
फिर इस बार भी मिलना था ।
रचना रच ऐसी खींच लिया,
मम भव भार जो हरना था ।।

तुम्हें इष्ट कहूँ या कहूँ गुरुवर,
एकाकार हुए तुम हो ।
निष्काम कृपा के सागर तुम,
खेवनहार बने तुम हो ।।

सिद्ध किया जो बीज मन्त्र,
मुझको दे उद्धार किया ।
स्थिर उद्देश्य किया मेरा,
प्रभु चरणों में है डाल दिया ।।

बीज हुआ पौधा जब ही,
आनन्द सिन्धु का भास हुआ ।
बन्धन भव के टूट रहे,
हृदय में शुद्ध प्रकाश हुआ ।।

नारद सम जब माया ने,
भरमाया मुझको जीवन में।
बाँह पकड़ तुमने खींचा,
पाप छुआ ना इस तन में ।।

तन सूक्ष्म धरे हो अब भी तुम,
हमको भव पार कराने को ।
पूर्ण भरो चरणामृत से,
ले चलो तभी तुम इस घट को ।।

हे रामकृष्ण अवतार हरे

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गया, बिहार

हे रामकृष्ण अवतार हरे,
मेरी सुनले करुण पुकार हरे !
हे भवखंडन दुःखभंजन हे,
मेरा हर ले भव-भय-भार हरे !!
अरज यही अब बन जा प्रभु,
बस मेरे खेवनहार हरे !
मोहभँवर में डूब रही,
मेरी नैया कर दे पार हरे !!

तुम ही जग कर्तार हरे,
तेरी लीला, अपरम्पार हरे !
चरण गहुँ बस तेरा ही,
एक तुम ही हो आधार हरे !!
भुक्ति-मुक्ति कुछ नहीं चाहिए,
चाहूँ बस तेरा प्यार हरे !
तेरे शरणागत हो जाऊँ,
तुम ही एक दातार हरे !!

तेरा दर्शन हर पल चाहूँ,
कर दे यह उपकार हरे !
तुम ही एक सत्य हो प्रभुजी,
मिथ्या यह संसार हरे !!
पूजा-पाठ नहीं कुछ जानूँ,
तुम ही सबका सार हरे !
तेरा दिया तुझी को अर्पण,
कर सर्वस स्वीकार हरे !!

पृष्ठ ३०७ का शेष भाग

तीन अलग-अलग लकड़ी के रथों में सवार होकर जाते हैं। भगवान अपने भाई बलभद्र और बहन सुभद्रा के साथ बहुत आनन्दित होकर फूलों और चन्दन से सजकर ७ दिनों के लिए अपनी मौसी गुंडिचा देवी के पास जाते हैं। विश्व भर के लोग उनकी झलक पाने और पवित्र रथ की रस्सी को खींचने के लिए आते हैं। गुंडिचा मन्दिर में उन्हें बहुत-सा भोजन और प्रेम दिया जाता है। इसीलिए रथ-यात्रा को गुंडिचा रथ-यात्रा के नाम से भी जाना जाता है।

बच्चो, इसलिए कहते हैं कि भगवान दिखते नहीं हैं, पर हमारे आस-पास हमेशा होते हैं। इसका प्रमाण जगन्नाथ प्रभु अपने दिये संकल्प (गुंडिचा को) निभाकर पूरा कर रहे हैं। ○○○

राष्ट्रीय विकास के अग्रदूत

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

भारतीय इतिहास असंख्य अनदेखे नायकों से भरा हुआ है, जिसकी पहचान सार्वजनिक रूप से नहीं हो पाई, पर उसका योगदान अमूल्य है। उनके संघर्ष, समर्पण और विजय की गाथाएँ आज के युवाओं के लिए प्रेरणा-स्रोत हैं।

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसका युवा वर्ग होता है। जब युवा अपनी ऊर्जा, बुद्धिमत्ता और नैतिक मूल्यों को रचनात्मक उद्देश्यों की ओर केन्द्रित करते हैं, तो समाज समृद्ध होता है। प्रत्येक युवा के लिए आवश्यक है कि वह राष्ट्र-निर्माताओं के संघर्ष, समर्पण और विजय की गाथाओं से ईमानदारी, धैर्य और समर्पण जैसे गुणों को आत्मसात् करे, जिससे निजी और सार्वजनिक; दोनों क्षेत्रों में सम्पूर्ण विकास सुनिश्चित हो।

चिकित्सा, शिक्षा, उद्यमिता, विज्ञान, इंजीनियरिंग, इतिहास और देशभक्ति के क्षेत्र में अज्ञात राष्ट्र-निर्माता नायकों ने राष्ट्र-निर्माण में अहम भूमिका निभाई है। युवाओं को उनके उत्कृष्ट योगदान से प्रेरणा लेनी चाहिए।

चिकित्सा क्षेत्र : डॉ. शशिकान्त जाधव – ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा के प्रणेता

महाराष्ट्र के सोलापुर जिले में जन्मे डॉ. शशिकान्त जाधव ने चिकित्सा क्षेत्र में असाधारण योगदान दिया है। उन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा सोलापुर में प्राप्त की और तत्पश्चात् मुंबई के ग्राण्ट मेडिकल कॉलेज से चिकित्सा की डिग्री प्राप्त की। उन्होंने अपने करियर का आरम्भ नगरीय चिकित्सालयों में की, लेकिन शीघ्र ही उन्होंने देखा कि ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव है। इसके पश्चात् उन्होंने अपना जीवन ग्रामीण क्षेत्रों में नि:शुल्क चिकित्सा सेवा प्रदान करने के लिए समर्पित कर दिया। सीमित संसाधनों के बावजूद, उन्होंने हजारों जीवन रक्षक शल्यक्रियाएँ कीं और निर्धनों से कोई शुल्क नहीं लिया। वर्तमान में वे महाराष्ट्र के दूरस्थ गाँवों में स्वास्थ्य सेवाओं का संचालन कर रहे हैं और गरीबों के लिए चिकित्सा सुविधाओं को सुलभ बना रहे हैं। उनका नि:स्वार्थ योगदान युवाओं के लिए यह उदाहरण प्रस्तुत करता है कि चिकित्सा क्षेत्र में सेवा का भी उतना ही महत्त्व है, जितना व्यवसाय का।

उद्यमिता : हरीश हाण्डे – ग्रामीण भारत को सौर ऊर्जा से प्रकाशित करने वाले युगपुरुष

अभियन्ता एवं सामाजिक उद्यमी हरीश हाण्डे ने भारत के सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में सौर ऊर्जा की सुविधा पहुँचाने का कार्य किया। उनके प्रयासों से हजारों गाँवों को स्थायी विद्युत-आपूर्ति मिली, जिससे न केवल छोटे व्यवसाय फले-फूले, बल्कि जीवन-स्तर में भी सुधार हुआ। उनकी यात्रा दर्शाती है कि नवाचार और संकल्प-शक्ति से किसी भी सामाजिक समस्या का समाधान सम्भव है।

हरीश हाण्डे की यह यात्रा आसान नहीं थी। जब उन्होंने ग्रामीण भारत में सौर ऊर्जा लाने का निर्णय लिया, तब उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रारम्भ में, ग्रामीण लोग इस नई तकनीक को अपनाने में हिचकिचा रहे थे और वित्तीय सहायता भी सीमित थी। लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी और छोटे स्तर पर कार्य प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे, जब लोगों ने सौर ऊर्जा के लाभों को देखा, तब उनकी परियोजना को व्यापक समर्थन मिलने लगा। आज उनके प्रयासों से हजारों गाँवों में प्रकाश है, जहाँ पहले अन्धेरा हुआ करता था।

हरीश हाण्डे का जन्म कर्नाटक में हुआ था। उन्होंने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) खड़गपुर से पढ़ाई की और बाद में मैसाचुसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (MIT) से उच्च शिक्षा प्राप्त की। वर्तमान में वे सौर ऊर्जा के क्षेत्र में अपनी संस्था सेल्को इंडिया के माध्यम से ग्रामीण भारत को सशक्त बना रहे हैं। उनके योगदान से लाखों लोगों को बिजली की सुविधा प्राप्त हुई है, जिससे शिक्षा, स्वास्थ्य और आजीविका के अवसरों में वृद्धि हुई है। उनका संघर्ष यह दर्शाता है कि किसी भी नवाचार को सफल बनाने के लिए धैर्य, लगन और सेवा-भाव अत्यन्त आवश्यक है।

विज्ञान एवं इंजीनियरिंग : रघुनाथ माशेलकर – विज्ञान को लक्ष्य तक पहुँचाने वाले वैज्ञानिक

डॉ. रघुनाथ माशेलकर का जन्म महाराष्ट्र के कोल्हापुर जिले में हुआ था। एक साधारण पृष्ठभूमि से आने वाले इस महान् वैज्ञानिक ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को आम जनता के लिए सुलभ बनाने का महान् कार्य किया। उन्होंने अपनी शिक्षा मुम्बई विश्वविद्यालय से प्राप्त की और आगे चलकर भारतीय विज्ञान संस्थान (IISc) में शोध कार्य किया।

डॉ. माशेलकर ने चिकित्सा और उद्योगों में मितव्ययी नवाचारों को बढ़ावा दिया, जिससे समाज के वंचित वर्ग को भी वैज्ञानिक प्रगति का लाभ मिल सके। उन्होंने पेटेंट प्रणाली और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों पर भी विशेष कार्य किया, जिससे भारतीय नवाचारों को वैश्विक स्तर पर मान्यता मिली। वर्तमान में वे कई शोध संस्थानों से जुड़े हुए हैं और नवोदित वैज्ञानिकों को मार्गदर्शन प्रदान कर रहे हैं। उनका संघर्ष हर युवा वैज्ञानिक और इंजीनियर के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

दशरथ माँझी : द माउंटेन मैन – पर्वत को काटकर मार्ग बनानेवाला योद्धा

दशरथ माँझी, जिन्हें 'माउंटेन मैन' के नाम से जाना जाता है, एक प्रेरणादायक व्यक्तित्व थे, जिन्होंने अपने अथक परिश्रम और दृढ़ निश्चय से एक असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाया।

दशरथ माँझी का जन्म १४ जनवरी, १९३४ को बिहार के गया जिले के गहलौर गाँव में एक गरीब मजदूर परिवार में हुआ था। उनका बचपन गरीबी और कठिनाइयों से भरा हुआ था, जिसके कारण वे औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके और बचपन में ही खेतों और पत्थर-खदानों में मजदूरी करने लगे। दशरथ माँझी ने किसी स्कूल या कॉलेज में शिक्षा प्राप्त नहीं की। उनकी सीखने की यात्रा जीवन के कठिन अनुभवों से होकर गुजरी।

उनका योगदान और प्रेरणादायक कहानी

गहलौर गाँव एक दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र में स्थित था, जहाँ बुनियादी सुविधाओं का अभाव था। सबसे बड़ी समस्या यह थी कि गाँव से निकटतम नगर या चिकित्सालय तक पहुँचने के लिए लोगों को लम्बी और कठिन पहाड़ी यात्रा करनी पड़ती थी।

१९६० के दशक में, दशरथ माँझी की पत्नी, फाल्गुनी देवी, इसी पहाड़ी को पार करते समय घायल हो गईं और समय पर चिकित्सा न मिलने के कारण उनकी मृत्यु हो गई। इस दर्दनाक घटना ने दशरथ माँझी को अन्दर तक झकझोर दिया। उन्होंने ठान लिया कि वे इस पहाड़ी को काटकर एक सड़क बनाएँगे, ताकि भविष्य में किसी को उनकी पत्नी की तरह कष्ट न झेलना पड़े।

अपने संकल्प को पूरा करने के लिए, दशरथ माँझी ने २२ वर्ष (१९६०-१९८२) तक अकेले छेनी, हथौड़ी और अन्य सरल औजारों की सहायता से पहाड़ को काटा। अन्ततः उन्होंने ११० मीटर लम्बी, ९.१ मीटर चौड़ी और ७.६ मीटर ऊँची सड़क बना दी, जिससे गहलौर और निकटतम नगर के बीच की दूरी ५५ किलोमीटर से घटकर मात्र १५ किलोमीटर रह गई।

वर्तमान स्थिति और समाज में योगदान

दशरथ माँझी की कहानी करोड़ों लोगों को प्रेरित करती है। उनकी बनाई सड़क आज भी हजारों ग्रामीणों के लिए जीवन-रेखा बनी हुई है। भारतीय सरकार ने उनकी असाधारण उपलब्धि को मान्यता दी और उन्हें पद्मश्री से सम्मानित करने की घोषणा की। आज वे सामाजिक परिवर्तन और अदम्य साहस का प्रतीक बन चुके हैं। उनकी प्रेरणादायक कहानी पर कई डॉक्यूमेंट्री फिल्में और २०१५ में माँझी : द माउंटेन मैन नामक बॉलीवुड फिल्म भी बनी।

बिहार के गरीब मजदूर दशरथ माँझी ने २२ वर्षों तक अकेले अपने श्रम से एक पहाड़ को काटकर सड़क बना दी, ताकि उनके गाँव के लोग आसानी से अस्पताल तक पहुँच सकें। उनकी कहानी हमें हार न मानने और समाज के लिए कुछ बड़ा करने की प्रेरणा देती है। उनका जीवन प्रत्येक युवा को समाज सेवा के प्रति समर्पण का सन्देश देता है।

निष्कर्ष

युवाओं को चाहिए कि वे नवाचार, ईमानदारी और अटूट आत्मबल के साथ समाज की प्रगति में योगदान दें, चाहे वह शासन, व्यवसाय, विज्ञान या सामाजिक सेवा आदि का कोई भी क्षेत्र हो। उन्हें एक न्यायसंगत और नैतिक समाज के निर्माण की दिशा में कार्य करना चाहिए। इन गुमनाम अर्थात् अप्रकाशित विभूतियों का संघर्ष और उपलब्धियाँ यह सिद्ध करती हैं कि कोई भी स्वप्न बड़ा नहीं होता और कोई भी बाधा अजेय नहीं होती। साहस, संकल्प और नैतिक मूल्यों के साथ युवा अपने भविष्य को न केवल समृद्ध, बल्कि सार्थक भी बना सकते हैं। ○○○

शिव-प्रिय श्रावण

स्वामी ईशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

भारतवर्ष एक आध्यात्मिक राष्ट्र है। इस महान देश के प्राणों में आध्यात्मिकता बसी हुई है। यहाँ साधक ज्ञान एवं भाव-भक्ति; इन दो प्रमुख भाव से प्रेरित होकर साधना करते हैं। एक ओर ज्ञानी-साधक महावाक्य-विचार के द्वारा जीव एवं ब्रह्म के एकत्व का अनुभव कर मोक्ष प्राप्त करते हैं, तो दूसरी ओर भक्तिमार्ग के साधक रससिन्धु श्रीभगवान का विभिन्न प्रकार से आस्वादन करते हैं। इसलिये भक्तिमार्ग के साधकों के जीवन में पर्व, तिथि, नक्षत्र, दिन, तीर्थ-स्थान एवं विभिन्न महीनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। ये सभी तिथि-पर्व-दिन महीना उस एक ही परमेश्वर के विभिन्न रूपों के साधना के लिये प्रसिद्ध हैं। जैसे कार्तिक मास श्रीकृष्ण एवं महादेव की उपासना के लिए प्रसिद्ध है, वैसे ही पौष का महीना सूर्य भगवान एवं विशेषकर बंगाल में माँ काली और लक्ष्मी देवी को समर्पित है।

भगवान के भक्तों में भी विभिन्न प्रकार के भाव परिलक्षित होते हैं। जो किसी कामना की पूर्ति हेतु ईश्वर-उपासना करते हैं, उन्हें सकाम भक्त कहते हैं और जो 'ईश्वर ही एक मात्र सत्य है' इसे बोधकर भगवान की प्रीति के लिये उपासना करके समस्त कर्मफल श्रीभगवान को ही समर्पित करते हैं, इन्हें निष्काम भक्त कहते हैं। ये दोनों ही भगवान के भक्त हैं। भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं –

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।७/१६।।

सकाम भाव के साधकों हेतु शास्त्रों में विभिन्न कर्मों का निर्देश है, जिससे श्रद्धासहित विधिपूर्वक उपासना करने पर विभिन्न प्रकार का वस्तु-लाभ होता है और निष्काम भाव से ईश्वर की उपासना करने पर चित्तशुद्धि के द्वारा साधकों को ज्ञान और भक्ति मिलती है। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे – "मिश्री जाने-अनजाने जैसे भी खाओ, वह मीठी ही लगेगी। क्योंकि वह उस वस्तु का द्रव्यगुण है।" जैसे पवित्र क्षणों के विशेष रूप से शक्तिशाली होने के कारण उस समय किया जानेवाला शुभ कर्म विशेष रूप से फलदायक होता है। वैसे ही इन पवित्र महीने, दिन, तिथि एवं पवित्र क्षणों में बहुत से साधक ईश्वर की उपासना में निमग्न रहकर स्वयं में एक आध्यात्मिक तरंग का संचार करते हैं, जो किसी भी साधक के मन को स्वत: ही ईश्वर की ओर आकर्षित करते हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण के जीवन में हम देखते हैं कि पावन क्षणों में उनका मन सहज ही समाधि में मग्न हो जाता था। यह पावन समय की महत्ता का प्रमाण है।

भारतवर्ष की आध्यात्मिक परम्परा में श्रावण का महीना विशेष है। इस महीने में विशेषकर भगवान शिव की पूजा-अर्चना की जाती है। श्रावण मास के सम्बन्ध में भगवान स्वयं कहते हैं – 'द्वादशस्वपि मासेषु श्रावण: मेऽतिवल्लभ:।' अर्थात् बारह महीनों में श्रावण मास मेरा अति प्रिय है। इस महीने का नाम श्रावण होने का तीन कारण भगवान ने बताया है। प्रथम इस महीने की महिमा सुनने योग्य है – '**श्रवणाहं**

यन्माहात्म्यं तेनासौ श्रावणो मतः।' दूसरा इस महीने में श्रवण नक्षत्र युक्त पूर्णिमा होती है, इसलिए इसका नाम है श्रावण – '**श्रवणर्क्षं पौर्णमास्यां ततोऽपि श्रावणः स्मृतः।**' और तीसरा, इस मास का माहात्म्य सुनने मात्र से ही भक्तों को सिद्धि मिलती है – '**यस्य श्रवणमात्रेण सिद्धि श्रावणोऽप्यतः**'। शास्त्रों में श्रावण-मास को साक्षात् शिव-स्वरूप बताया गया है – '**द्वादशस्वपि मासेषु श्रावणः शिवरूपकः।**' यह महीना इतना पवित्र और निर्मल है कि इसकी तुलना आकाश से करके इसका एक नाम 'नभा' दिया गया है – '**स्वच्छत्वाच्च नभस्तुल्यो नभा इति ततः स्मृतः।**' श्रावण का महीना चातुर्मास के अन्तर्गत होने के कारण इस महीने में साधु-संत एक स्थान में निवासकर शास्त्र-अध्ययन एवं भगवान का नाम-स्मरण करते हैं, जिससे आध्यात्मिक वातावरण में शत गुणा वृद्धि होती है।

स्कन्दपुराण में श्रावण के महीने में साधकों के लिये विधि एवं निषेधों का वर्णन किया गया है और श्रद्धासहित इन नियमों को पालन करने से क्या फल प्राप्त होता है, वह भी बताया गया है। इन नियमों का पालन करने के लिए अन्तर्बाह्य शुद्धता एवं संयम बहुत आवश्यक है। यह विधि-निषेध साधक के चित्त को शुद्ध कर ईश्वर-रूपी पारस पत्थर के स्पर्श से उसे सोना बना देता है। 'ईश्वर ही केवल सत्य है और जगत मिथ्या है', यह सत्य साधक-हृदय को उद्भाषित करके उसे धीरे-धीरे प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति एवं निवृत्ति से निर्वृत्ति की ओर अग्रसर करा देता है। मन का यही उत्तरण करना ही शास्त्रों का उद्देश्य है। इसी दृष्टि से मुण्डकोपनिषद में कहा गया है –

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाऽभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।।१/२/१२

श्रावण का महीना शिवमय है। मान्यता एवं लोकगाथा के अनुसार यह महीना भगवान शिव की दिव्य लीलाओं से संयुक्त है। इसीलिए इसे कहीं शिव-वल्लभ तो कहीं शिवस्वरूप कहकर वर्णन किया गया है।

प्रचलित मान्यता के अनुसार माँ पार्वती ने शिवजी को पति रूप में प्राप्त करने के लिए निर्जला उपवास कर कठोर तप किया था। माँ पार्वती ने श्रावण मास में महादेव की आराधना की थी। इसलिए यह महीना महादेव को अत्यन्त प्रिय है। शिव-पार्वती की इसी दिव्य-लीला को स्मरण करके १६ सोमवार का व्रत-पालन किया जाता है, जिसका प्रारम्भ इसी पुण्य श्रावण महीने में होता है। सोमवार शिवजी को अति प्रिय है। इस सम्बन्ध में स्कंदपुराण के ब्रह्मखंड के अंतर्गत उत्तराखंड के अष्टम अध्याय में कहा गया है –

केवलेनापि ये कुर्युः सोमवारे शिवार्चनम्।
न तेषां विद्यते किंचिदिहामुत्र च दुर्लभम्।।

अर्थात् जो लोग सोमवार में शिव का अर्चन करते हैं, उनको इहलोक-परलोक में किसी भी वस्तु की कोई कमी नहीं रहती है। उन्हें सभी वस्तुएँ सुलभ हो जाती हैं।

यदि यह सोमवार श्रावण महीने में होता है, तो फिर इसका महत्त्व कई गुना बढ़ जाता है। भारतवर्ष में विभिन्न शिवक्षेत्रों में श्रावण महीने के सोमवार को विशेष रूप से मनाया जाता है। गंगा के तट पर आनन्दवन, रुद्रवास, मुक्तिक्षेत्र भारत-आत्मा के मूर्तरूप वाराणसी में श्रावण महीने के चार सोमवार को भगवान श्रीविश्वनाथ जी का विशेष रूप से शृंगार किया जाता है। पहला सोमवार शंकर रूप में, दूसरा सोमवार गैरिक वेश में, तीसरा सोमवार अर्धनारीश्वर के रूप में एवं अन्तिम सोमवार रुद्राक्ष के आभूषणों से भूषित किया जाता है।

काशी के निकट सारंगनाथ मन्दिर के सम्बन्ध में यह मान्यता है कि देवी पार्वती के भाई ऋषि सारंग जब तपस्या कर वापस आ रहे थे, तब उनको पता चला कि उनकी बहन पार्वती का विवाह भिखारी शिव के साथ हुआ है और वे लोग अभी काशी में निवास कर रहे हैं, तब वे अपनी बहन को भेंट देने के लिये बहुत-सी स्वर्ण-मुद्राएँ लेकर काशी की ओर चले। जब वे सारनाथ में पहुँचे, तब भावनेत्रों से स्वर्णमयी काशी का अवलोकन कर भगवान शिव के सच्चे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर शिवजी की आराधना में मग्न हो गए। सारंगनाथ में उनकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर देवाधिदेव महादेव ने उनको यह वरदान दिया था की श्रावण के महीने में पार्वतीसहित शिवजी सारंगनाथ में ही आकर निवास करेंगे।

भारत के एक अन्य मुक्तिक्षेत्र महाकालेश्वर में श्रावण-भाद्रपाद के महीने में श्रावण महोत्सव मनाया जाता है। वहाँ पर नटराज शिव को प्रसन्न करने के लिए कई प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। कालों के

काल महाकाल की विशेष शोभायात्रा निकलती है। श्रावण-मास में भगवान महाकालेश्वर समग्र नगर भ्रमण करते हैं।

श्रावण मास में भक्त पूरे महीने बैद्यनाथ धाम और अन्य शिव मन्दिरों में सामूहिक कावड़िया यात्राओं के माध्यम से भगवान शिव का जलाभिषेक करते हैं। क्योंकि जलाभिषेक शिव को अत्यन्त प्रिय है। शास्त्रों में कहा गया कि किस देवता को कौन-सी वस्तु प्रिय है –

''गणेशो मोदकाकांक्षी, अलंकारप्रियो हरिः।
वारिधाराप्रियो रुद्रः, नमस्कारप्रियो रविः।''

हिन्दू मान्यता के अनुसार श्रावण मास में ही समुद्र-मंथन किया गया था। रोग-जरा-मृत्यु देवता और दैत्य; सबके निरन्तर साथी हैं और इससे बचने का एकमात्र उपाय है अमृत। वह अमृत समुद्र के गर्भ में है। वह मंथन करने से ही प्राप्त होगा। समुद्र-मंथन प्रारम्भ हुआ। एक ओर देवता और दूसरी ओर दानव। मंथन से भयंकर विषैला हलाहल उत्पन्न हुआ। इसके अत्यन्त तीव्र विष से संसार क्षणभर में नष्ट हो जायेगा। इसलिए आशुतोष महादेव त्रिभुवन के भय को दूर करने के लिए अदम्य उत्सुकता के साथ आगे आए। उस तीव्र विष को धारण करने के कारण महादेव नीलकंठ के नाम से प्रसिद्ध हुए। अंग की यह कालिमा उनकी अंग-शोभा बन गयी –

स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो।
विकारोऽपि श्लाध्यो भुवन-भय-भङ्ग-व्यसनिनः।।

लेकिन उस विष के बाद उनके शरीर में जलन होने लगी। और उस जलन को शान्त करने के लिए देवी-देवताओं ने मिलकर महादेव का जल से अभिषेक किया। इसलिये भी श्रावण मास में शिवजी का जलाभिषेक किया जाता है।

श्रावण का यह पवित्र महीना भगवान शिव के साथ-साथ भगवान विष्णु से भी जुड़ा है। नारायण और शिव एक ही परमेश्वर की दो अभिव्यक्तियाँ हैं। पराशर मुनि विष्णु पुराण के आरम्भ में कहते हैं – 'जो अविकारी हैं, जो शाश्वत, शुद्ध, परमात्मा-स्वरूप हैं, जो सर्वदा एक समान और सर्व-विजयी हैं, जिन्हें हरि, हिरण्यगर्भ और शिव के रूप में जाना जाता है, जो प्रणव रूप एवं सृष्टि, स्थिति, प्रलय के स्वामी हैं, मैं उस वासुदेव को नमन करता हूँ।'' –

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे।।
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे।।

(विष्णुपुराण १/२/१,२)

ऐसा अन्यत्र कहा गया है –

सृष्टि स्थिति-अन्तःकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञा याति भगवान् एक एव जनार्दनः।।

(विष्णुपुराण १/२/६६)

इसका अर्थ है एकमात्र भगवान जनार्दन ही सृष्टि, स्थिति एवं लय करने के लिए ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का नाम ग्रहण करते हैं। स्कन्दपुराण (२३,४१) में कहा गया है –

शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे।
शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः।।
यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।
यथाऽन्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्तिरायुषि।
यथाऽन्तरं न भेदाः स्युः शिवराघवयोस्तथा।।

हमलोगों ने देखा कि विष्णु एवं शिव; दोनों एक ही परमात्म-तत्त्व है और इसी परमात्मा के दो दिव्य प्रकाश के संयुक्त होने के कारण श्रावण का महीना अत्यन्त पवित्र एवं आनन्दवर्धक है। श्रावण महिमा के अन्त में महादेव कहते हैं –

ज्ञात्वेमं मत्प्रियं मासं पूजयेत् केशवं च माम्।
कृष्णाष्टमी च तत्रापि मम प्रियतरा तिथिः।।

OOO

कविता

जगद्गुरु जय रामकृष्ण प्रभु

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

जगद्गुरु जय रामकृष्ण प्रभु, तुम ही हो भवबन्धनहारी ।
सत्य प्रेम करुणा के सागर, ज्ञान भक्ति के तुम्हीं पुजारी ।।
ब्रह्मभाव में सदा लीन तुम सकल जगत के नियमनकारी ।
धर्मतत्त्व के मूर्त रूप हो, तुम हो विषय-विराग-प्रसारी ।।
तुम ही हो इस जग के स्वामी, तुम ही हो प्रभु कलिमलहारी ।
माया-पाशविवर्जित तुम हो, तुम्हीं हो निर्गुण निराकारी।।
सर्वधर्म-समभाव-समर्थक तुम हो प्रभु आनन्दविहारी ।
मुझे अपने शरण में रख लो, करूँ वन्दना सतत तुम्हारी ।।

प्रश्नोपनिषद् (६१)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

सृष्टि का क्रम

भाष्य – ईश्वरेण एव सर्वाधिकारी प्राणः पुरुषेण सृज्यते। कथम्?

भाष्यार्थ – पुरुष अर्थात् ईश्वर के द्वारा सर्वाधिकारी (मंत्री के समान) प्राण की रचना की जाती है। किस प्रकार की जाती है? (यह आगे कहते हैं) –

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनः। अन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च।।६/४।।

अन्वयार्थ – स: (उस परम-पुरुष ने) प्राणम् (प्राण अर्थात् हिरण्यगर्भ की) असृजत (रचना की), प्राणात् श्रद्धाम् (प्राण से श्रद्धा और), खं वायु: ज्योति: आप: पृथिवी इन्द्रियम् मन: (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, दस इन्द्रियों तथा मन को बनाया), (इसके बाद) (इनकी स्थिति हेतु) अन्नम् (अन्न को बनाया), अन्नात् वीर्यम् (अन्न से बल), तप: (तप), (उसके लिये) मन्त्रा: (मन्त्रों को), कर्म: (कर्म को), लोका: (लोकों को), लोकेषु च नाम च (तथा लोकों में नाम को भी) (बनाया)।।४।।

भावार्थ – उस परम-पुरुष ने प्राण अर्थात् हिरण्यगर्भ की रचना की, प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, दस इन्द्रियों तथा मन को बनाया; इसके बाद, इनकी स्थिति हेतु अन्न को बनाया, अन्न से बल, तप, (उसके लिये) मन्त्रों, कर्म, लोकों को; और लोकों में नाम को भी बनाया।।४।।

भाष्य – <u>स</u> पुरुष उक्त-प्रकारेण इक्षित्वा <u>प्राणं</u> हिरण्यगर्भ-आख्यं सर्व-प्राणि-करण-आधारम् अन्तरात्मानम् <u>असृजत</u> सृष्टवान्।

भाष्यार्थ – उस पुरुष ने पूर्वोक्त प्रकार से विचार करके 'हिरण्यगर्भ' नामवाले समस्त प्राणियों की इन्द्रियों के आधारस्वरूप 'अन्तरात्मा' अर्थात् समष्टि प्राण को बनाया।

भाष्य – अतः प्राणात् श्रद्धां सर्व-प्राणिनां शुभ-कर्म-प्रवृत्ति-हेतुभूताम्। ततः कर्मफल-उपभोग-साधन-अधिष्ठानानि कारण-भूतानि महा-भूतानि असृजत।

भाष्यार्थ – उस प्राण से, उसने समस्त प्राणियों की भले कर्मों में प्रवृत्ति के हेतुरूप श्रद्धा की सृष्टि की। उसके बाद, उसने कर्मफल के उपभोग के (शरीर-रूपी) साधन के आधार-स्वरूप कारणभूत – (पाँच) महाभूतों की सृष्टि की।

भाष्य – <u>खं</u> शब्दगुणम्, <u>वायुं</u> स्वेन स्पर्शेन कारण-गुणेन च विशिष्टं द्विगुणम्। तथा <u>ज्योतिः</u> स्वेन रूपेण पूर्वाभ्यां च विशिष्टं त्रिगुणं शब्द-स्पर्शाभ्याम्।

भाष्यार्थ – (कौन से?) – सबसे पहले उसने 'शब्द'-गुण-विशिष्ट आकाश को रचा; फिर उस (वायु) के अपने गुण 'स्पर्श' तथा (अपने मूल) कारण (आकाश) के 'शब्द'-गुण से युक्त करके दो गुणवाले वायु को; इसके बाद (अग्नि के) अपने गुण 'रूप' और पहले दो गुण 'शब्द' तथा 'स्पर्श' से युक्त करके तीन गुणों वाले तेज (अग्नि) को;

भाष्य – तथा <u>आपो</u> रसेन गुणेन-असाधारणेन पूर्व-गुण-अनुप्रवेशेन च चतुर्गुणाः। तथा गन्ध-गुणेन पूर्व-गुण-अनुप्रवेशेन च पञ्चगुणा <u>पृथिवी</u>।

भाष्यार्थ – फिर (जल के) अपने विशेष गुण 'रस' के साथ पूर्व-गुणों के योग से चार गुणोंवाले जल को और (पृथिवी के अपने) 'गन्ध' गुण के साथ पूर्व-गुणों के योग से पाँच गुणोंवाली पृथिवी को बनाया। **(क्रमशः)**

कारगिल विजय दिवस विशेष

कारगिल के वीरों का पुण्य स्मरण

नम्रता वर्मा, पी.आई.बी. विभाग, दिल्ली

'कारगिल' कश्मीर घाटी लद्दाख और सियाचिन ग्लेशियर पर सैन्य दृष्टिकोण से भारत का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। इसी भूभाग पर एक सुनियोजित योजना के अन्तर्गत पाकिस्तानी सैनिकों एवं पाक समर्थित घुसपैठियों ने कब्जा करने की कोशिश की। भारतीय सेना ने घुसपैठियों के उन्मूलन के लिये मई, १९९९ में 'ऑपरेशन विजय' प्रारम्भ किया। वहीं भारतीय नौसेना एवं वायुसेना ने इस अभियान को 'ऑपरेशन सफेद सागर' और 'ऑपरेशन तलवार' का नाम दिया।

भारतीय सेना ने इस अभियान में तोलोलिंग हाइट, टाइगर हिल, प्वाइंट ४८७५ जैसी महत्त्वपूर्ण चोटियों पर विजय प्राप्त की। कारगिल के दुर्गम भौगोलिक क्षेत्र में दो महीने तक अविराम युद्ध करने के बाद भारतीय सेना २६ जुलाई, १९९९ को विजयी हुई। कारगिल युद्ध में अपने प्राणों की आहुति देने वाले सैन्य वीरों के सम्मान में भारत में प्रति वर्ष २६ जुलाई को कारगिल विजय दिवस मनाया जाता है। आज हम कारगिल के नायकों का पुण्य स्मरण कर रहे हैं, जिनके त्याग से ही भारत की अखण्डता एवं सम्प्रभुता अक्षुण्ण बनी हुई है।

पराक्रम के प्रतीक मनोज पाण्डेय – कारगिल युद्ध में सर्वोच्च बलिदान देनेवाले नायकों में से एक कैप्टन मनोज कुमार पाण्डेय हैं। देशप्रेम एवं पराक्रम मनोज की रगों में दौड़ता था। उत्तरप्रदेश के सीतापुर में जन्मे मनोज पाण्डेय से राष्ट्रीय रक्षा अकादमी के साक्षात्कार समिति ने पूछा कि आप फौज में क्यों सम्मिलित होना चाहते हैं? नि:संकोच मनोज ने उत्तर दिया – ''सर, मैं परमवीर चक्र पाना चाहता हूँ।'' परमवीर चक्र भारत का सर्वोच्च सैन्य सम्मान है। इस युवा कैडेट ने जो निश्चय किया था, उसे पूरा कर दिखाया।

सैन्य प्रशिक्षण पूर्ण करने के उपरान्त मनोज कुमार पांडेय १/११ गोरखा राइफल्स में तैनात हुए। कारगिल युद्ध के दौरान, ३ जुलाई, १९९९ को मनोज ने अपनी टुकड़ी के साथ मिलकर खालूबार रिज पर पुन: भारतीय ध्वज लहराया। युद्ध के दौरान असाधारण वीरता का प्रदर्शन करते हुए उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी। कैप्टन मनोज पांडेय को परमवीर चक्र (मरणोपरान्त) से सम्मानित किया गया।

कारगिल विजय के नायक विक्रम बत्रा – परमवीर चक्र विजेता विक्रम बत्रा ७ जुलाई, १९९९ को कारगिल युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। ऑपरेशन विजय के दौरान १३ जैक राइफल्स के कैप्टन विक्रम बत्रा को पॉइण्ट ५१४० को शत्रुओं के कब्जे से मुक्त कराने का लक्ष्य दिया गया था। विक्रम बत्रा ने अपने दल के साथ वीरता से युद्ध लड़ते हुए यह पॉइण्ट शत्रुओं से छुड़ाया। कारगिल के पॉइण्ट ५१४० पर तिरंगा लहराने वाले विक्रम बत्रा शौर्य एवं उत्साह से परिपूर्ण अधिकारी थे।

वहीं, अभियान के दौरान जब वे अपने अगले लक्ष्य पॉइण्ट ४८७५ की ओर बढ़ रहे थे, तभी ऊपर से चल रही गोलियों ने उन्हें अपना निशाना बना लिया। गम्भीर रूप से घायल हो जाने के उपरान्त भी विक्रम बत्रा अपने दल का नेतृत्व करते रहे और इस असम्भव कार्य को सम्भव किया। उनकी स्मृति में पॉइण्ट ४८७५ को बत्रा टॉप का नाम दिया गया है। हिमाचल प्रदेश के पालमपुर जिले में जन्मे विक्रम बत्रा का बलिदान यह देश कभी विस्मृत न कर सकेगा।

विजय पताका लहराने वाले विजयन्त – कारगिल के तोलोलिंग पर विजय पताका लहराने वाले कैप्टन विजयन्त थापर भारतीय सेना में सेवाएँ देनेवालों की चौथी पीढ़ी में से थे। उनके पिता, दादा एवं परदादा भी भारतीय सेना में रहे। कैप्टन विजयन्त के पिता कहते हैं कि वे जन्म से ही सैनिक थे। इन अर्थों में कि उनके भीतर निर्भयता, साहस एवं चुनौतियों से लोहा लेने की प्रवृत्ति बाल्यकाल से विद्यमान थी।

कैप्टन विजयन्त थापर ने दिसम्बर, १९९८ में भारतीय सैन्य अकादमी से स्नातक की उपाधि प्राप्त की और १२ राजपूताना राइफल्स में सम्मिलित हो गए। २५ मई, १९९९ को उनकी यूनिट को द्रास जाने और तोलोलिंग, टाइगर

शेष भाग पृष्ठ ३३३ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (४८)

(नवम अध्याय ९/ २)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

क्रमविभाज्यमानानि वयोऽतीते मनांसि च।
तदर्धं याति भार्यायां विवाहेऽनुष्ठिते सति।।६।।
तस्यार्धं सुतजातेषु ततः शेषार्धमेव च।
मातृ-पितृ-यशो-मान-वसन-भूषणादिषु।।७।।

– आयु होने पर मन भी क्रमश: विभाजित हो जाता है। विवाह होने से आठ आना पत्नी के ऊपर चला जाता है, सन्तान होने पर पुन: चार आना उनके ऊपर चला जाता है। शेष चार आना माता, पिता, यश-प्रतिष्ठा, वेश-भूषा इत्यादि में चला जाता है।

अत ईश्वरलाभाय चेष्टन्ते ये हि शैशवे।
सुखेन ते लभन्ते तं वृद्धानां तु सुदुष्करम्।।८।।

– इसलिए बचपन से जो लोग ईश्वर प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते हैं, वे सहज ही उन्हें प्राप्त कर सकेंगे। किन्तु वृद्धावस्था में होना कठिन है।

वृद्धत्वात्कठिनीभूते शुककण्ठे न सम्भवेत्।
वाक्यं सुललितं यद्वत् बाल्ये यत्सुकरं भवेत्।।९।।

– जैसे वृद्धावस्था में तोता से सुन्दर वाणी बोलना सम्भव नहीं होता। बचपन से उसे जो सिखाया जाता है, उसे ही वह शीघ्र सहजता से बोल देता है।

सुसाध्यं नैव वार्धक्ये तत् स्थापयितुमीश्वरे।
बाल्ये स्थिरत्वमाप्नोति सौकर्येनैव यन्मनः।।१०।।

– वैसे ही वृद्धावस्था में सहज ही ईश्वर की ओर मन नहीं जाता, किन्तु बचपन में थोड़े प्रयास से ही मन ईश्वर में लग जाता है।

दुग्धेऽस्य षोडशानां चेदंशैकं वर्तते जलम्।
तत् स्वल्पेन्धनयोगेन दुग्धं सुखं घनीभवेत्।।११।।

– एक सेर दूध में एक छटाक जल रहने पर उस दूध को थोड़ा-सा उबालने पर ही सहज ही खीर बनाया जा सकता है।

दुग्धे भागचतुर्णां चेत्तस्य भागत्रयं जलम्।
सुखं तन्न घनीभूतं भूरीध्मदहनाद् भवेत्।।१२।।

– किन्तु एक सेर दूध में तीन पाव जल रहने से सहज ही खीर नहीं बनती। बहुत-सी लकड़ी, खर-पात जलाने से तब जाकर खीर बनती है।

विषय-वासनायुक्तं स्वल्पं बालमनस्तथा।
यतस्तदीश्वरं गच्छेद् यत्ने कृते मनागपि।।१३।।

– उसी प्रकार बालक के मन में विषय-वासना बहुत कम होता है। थोड़ा-सा प्रयास करने से ही ईश्वर की ओर आगे बढ़ जाता है।

मनोऽखिलं तु वृद्धानां विषयवासनादिना।
उपान्त परिपूर्णत्वात्तं नानुवर्तते सुखम्।।१४।।

– किन्तु वृद्धों के मन में विषय-वासना गज-गज करती रहती है, इसलिए उनका मन सहज ही ईश्वर की ओर नहीं जाता है।

वंशो हि हरितो यावद् हेलयावनतो भवेत्।
यदायं याति पक्वत्वं भिद्यते न तु नम्यते।।१५।।

– जब तक बाँस कच्चा रहता है, तब तक उसे झुकाया जा सकता है। पके बाँस को झुकाने पर वह नहीं झुकता है, टूट जाता है।

मनस्तथैव बालानां सुकरं नेतुमीश्वरम्।
दुष्करं तत्तु वृद्धानामन्यत्र धावतीश्वरात्।।१६।।

– वैसे ही बच्चों के मन को सहज रूप से ईश्वर की ओर ले जाया जा सकता है, किन्तु वृद्धों के मन को ईश्वर की ओर ले जाना कठिन है। क्योंकि वह अन्यत्र भागने लगता है। **(क्रमशः)**

गुरु-पूर्णिमा विशेष

शिष्य के दिव्य स्वरूप के प्रकाशक हैं गुरुदेव

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन

ॐ

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

– गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु महेश हैं, गुरु ही साक्षात् परब्रह्म हैं, ऐसे सद्गुरु को प्रणाम।

एक बार बुद्धदेव जंगल के मार्ग से जा रहे थे। कुछ लोगों ने उनसे कहा कि आप जिस मार्ग से जा रहे हैं, उस मार्ग में एक डाकू रहता है, वह अंगुलीमाल के नाम से कुख्यात है। वह बहुत क्रूर है, हिंसक है, अत्याचारी है, वह लोगों को लूटकर उनकी अंगुलियाँ काट लेता है। इसलिये कृपया आप उस मार्ग से मत जाइये। किन्तु बुद्ध निर्भीक थे। वे जाने लगे। मार्ग मे चलते हुए वह हिंसक डाकू उन्हें मिला। उसने बुद्ध को भय दिखाने का प्रयास किया। उसने कहा कि मैं अपने गले में अंगुलियों की माला पहना हुआ हूँ। जानते हो, यह माला कैसे बनी है? इस मार्ग से जो भी यात्री जाते हैं, मैं उन्हें लूटता हूँ और उनकी अंगुलियों को काटकर उसकी माला बनाता हूँ। उसके बहुत डर दिखाने के पश्चात् भी बुद्ध शान्त रहे। उनकी शान्त अवस्था देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। तब बुद्ध ने कहा कि तुम यह सब जो कर रहे हो, क्या उससे तुम्हारे मन में शान्ति है? वह चुप रहा। तब बुद्ध ने कहा कि मैं तुम्हें परम शान्ति का मार्ग दिखा सकता हूँ। बुद्ध को देखकर उसके मन में भी इच्छा हुई, फिर उसने बुद्ध की शरण ली। बुद्ध जैसे गुरु के मार्गदर्शन से उसके जीवन में आमूल परिवर्तन हुआ। उसने विरक्त का मार्ग ग्रहण किया। वह डाकू से सन्त बन गया। गुरु का सान्निध्य ऐसा ही होता है। स्वामी विरजानन्द जी महाराज कहते हैं 'त्रितापदग्ध जीव को जो शान्ति के पथ पर ले जाते हैं, वही गुरु हैं।' हम कितनी ही पुस्तकें क्यों न पढ़ लें, पर हमें अपने सामने एक जीवन्त व्यक्ति का आदर्शमय जीवन अधिक प्रभावित करता है। गुरु के रूप में हम अपने आदर्श को देखते हैं और उससे प्रेरणा पाते हैं। जब हम किसी मनुष्य में अपने से अधिक आध्यात्मिक प्रकाश देखते हैं, तब हम उन्हें गुरु के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

गुरु पूर्णिमा : गुरु पूर्णिमा उन सभी आध्यात्मिक गुरुजनों को समर्पित परम्परा है, जिसमें गुरुओं की पूजा ईश्वर के रूप में की जाती है। गुरु पूर्णिमा गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा, गुरु पूजा और कृतज्ञता का प्रतीक है। यह पर्व हिन्दू पंचांग के आषाढ़ मास के पूर्णिमा को गुरु पूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है। गुरु पूर्णिमा वेदव्यास के जन्मदिन के रूप में भी मनाया जाता है। महर्षि वेदव्यास ने चारों वेदों का विस्तार किया। महाभारत, अठारह महापुराणों सहित उन्होंने ब्रह्मसूत्र की रचना की। उनके सम्मान में गुरु पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा या गुरु पूर्णिमा कहते हैं।

गुरु शब्द का अर्थ : गुरु शब्द में 'गु' का अर्थ अन्धकार या अज्ञान और 'रु' का अर्थ प्रकाश (अन्धकार का निरोधक) है। अर्थात् अज्ञान को हटाकर प्रकाश (ज्ञान) की ओर ले जानेवाले को गुरु कहा जाता है। गुरु की कृपा से ईश्वर का साक्षात्कार होता है। ईश्वर की पाँच शक्तियाँ होती हैं – सृष्टि, स्थिति, प्रलय, अनुग्रह और निग्रह (माया) शक्ति। अनुग्रह शक्ति ही गुरु के रूप में प्रकट होती है। गुरु अपने शिष्य के भीतर असीम सम्भावनाओं के द्वार खोल देते हैं। इससे व्यक्ति अपनी सीमाओं को पार कर अनन्त ब्रह्माण्ड का अंग बन जाता है। सभी के जीवन में गुरु अवश्य होना चाहिए। जिनके जीवन में गुरु नहीं हैं, उनको श्रद्धा से गुरु खोजना चाहिए। गुरु मिलने पर नतमस्तक होकर अपना अहंकार उनके चरणों में रख देना चाहिए। गुरु के प्रति समर्पित होते ही गुरुत्व, गुरुकृपा, गुरुऊर्जा, गुरुस्पर्श और गुरुवाणी शिष्य में प्रवाहित होने लगती है। जब भी गुरु के सामने जाएँ, तो श्रद्धापूर्वक उन्हें दण्डवत् प्रणाम करें।

गुरु कौन हैं : एक कहानी है। एक सिंहनी थी। वह गर्भवती थी। वह भेड़ों के दल में शिकार करने के लिए नदी के ऊपर से कूद रही थी, पर किसी कारण से वहीं शावक को जन्म देती है और उसकी मृत्यु हो जाती है। शावक अकेले माँ को पुकारने का, स्पर्श करने का प्रयास करता है, पर उसे कोई उत्तर नहीं मिलता। तब वह रोता हुआ पास में घास चर रहे भेड़ों के दल में जा मिलता है और भेड़ों जैसा

आचरण करने लगता है। जैसे वे मिमियाते हैं, जैसे वे घास खाते हैं, वैसा ही आचरण वह करने लगता है। इसी प्रकार वह धीरे-धीरे बड़ा हो गया। तभी एक दिन एक सिंह ने देखा कि एक सिंह का बच्चा भेड़ों के साथ में भेड़ों की भाँति आचरण कर रहा है। वह तीव्र गति से उसकी ओर गया। भेड़ भागने लगे। वह शावक भी भागने लगा। उस सिंह ने उसे पकड़ लिया और कहा कि तुम क्या कर रहे हो? तुम भेड़ नहीं हो, तुम सिंह हो। शावक को विश्वास नहीं हुआ। तब सिंह ने कहा तुम मेरे साथ चलो। उसे वह एक नदी के किनारे ले जाकर कहा इस प्रतिबिम्ब में मेरा रूप देखो और तुम्हारा रूप देखो, हम दोनों एक जैसे हैं। हम सिंह हैं, हम भेड़ नहीं हैं। जब सिंह ने उसे कुछ मांस खिलाया, तब उस शावक को ज्ञात हुआ कि वास्तव में वह सिंह है।

वास्तव में हम अपने आप को एक जीव मानकर स्वयं को भूल जाते हैं। गुरु ही हैं, जो हमें हमारा वास्तविक स्वरूप बताते हैं। स्वामीजी कहते हैं, 'जीवात्मा की शक्ति को जाग्रत करने के लिए किसी दूसरी आत्मा से ही शक्ति का संचार होना चाहिए। जिस व्यक्ति की आत्मा से दूसरी आत्मा में शक्ति का संचार होता है, वह गुरु कहलाता है और जिस आत्मा में यह शक्ति संचारित होती है, उसे शिष्य कहते हैं।'

गुरु का महत्त्व : गुरु शारीरिक रूप से विभिन्न हो सकते हैं, लेकिन गुरुतत्त्व तो एक ही है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध शरीर से परे आत्मिक होता है। गुरु के पूजन से, गुरु के उपदेशों को अपने जीवन में उतारने से तथा गुरु-मन्त्र का जप करने से हमारे विकार वैसे ही दूर होते हैं, जैसे प्रात: होने पर रात्रि दूर हो जाती है। चित्त में पड़े अन्धकार को मिटानेवाले गुरु ही होते हैं। गुरु ही हैं, जो हमें जीना सिखाते हैं और मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। कहते हैं 'हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर' अर्थात् हरि के रूठने पर तो गुरु की शरण मिल जाती है, लेकिन गुरु के रूठने पर कहीं भी शरण नहीं मिलता। गुरु महिमा में कहा गया है –

गुरुर्देवो गुरुर्धर्मो गुरौ निष्ठा परं तपः।
गुरोः परतरं नास्ति, त्रिवारं कथयामि ते।।

अर्थात् गुरु ही देव हैं, गुरु ही धर्म हैं, गुरु में निष्ठा ही परम धर्म है। गुरु से अधिक और कुछ नहीं है। कबीरदासजी ने अपने दोहों में गुरु के महत्त्व का वर्णन पूरी आत्मीयता से किया है –

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागू पायँ।
बलिहारि गुरु आपने गोविन्द दियो बताय।।

अर्थात् यदि गुरु और ईश्वर (गोविन्द) दोनों एक साथ हों, तो पहले गुरु के चरणों में शीश झुकाना चाहिए, क्योंकि गुरु ने ही हमें ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग दिखाया है।

मानस में तुलसीदासजी लिखते हैं –

गुरु बिन भवनिधि तरहिं न कोई ।
जौं बिरंचि संकर सम होई।।

भले ही कोई भगवान शंकर या ब्रह्माजी के समान ही क्यों न हो, किन्तु गुरु के बिना भवसागर नहीं तर सकता।

गुरु-वाक्य में निष्ठा : एक कथा है। एक राजा की पुत्री थी। उसका नाम था वैराग्यवती। वैराग्यवती में बचपन से ही परम वैराग्य था। उसे देखकर राजा ने उसके लिए अलग से कक्ष बनवाया था। उसकी व्यवस्था ऐसी की गयी थी कि उसे साधना में कोई व्यवधान न हो। वह उसमें रहकर साधना करती थी। एक दिन उस स्थान में एक चोर चोरी करने गया। उस समय वह भजन गा रही थी। जिसका अर्थ था कि हे गुरु मुझे आप मिल जाएँ। मैं आपकी खोज में हूँ। तब चोर सोचता है कि अच्छा यह तो जगी हुई है, चोरी करते हुए पकड़े गये, तो संकट में पड़ जाएँगे। इसे गुरु की आवश्यकता है, तो क्यों न मैं इसका गुरु बन जाऊँ और इसका सारा धन लूट लूँ। तब वह साधु के वेश में आ गया और कहने लगा – मुझे प्यास लगी है। राजकुमारी पानी लेने जाती है, तो वह चोर साधु राजकुमारी से पूछता है – तुम्हारी दीक्षा हुई है? तुमने गुरु बनाया है? वह कहती है – नहीं। चोर साधु – तब तो मैं तुम्हारे हाथों से पानी नहीं पीऊँगा। वैराग्यवती को बड़ा दुख होता है कि एक व्यक्ति प्यासा है और मैं उसे पानी भी नहीं पिला पा रही हूँ। तब वह कहती है – अच्छा, एक काम कीजिए, आप मुझे दीक्षा दे दीजिए। उसके बाद तो आप पानी पी सकते हैं। तब चोर साधु कहता है कि हम तो वैराग्यवान पुरुष हैं, ऐसे दीक्षा नहीं देते। हम जंगलों में दीक्षा देते हैं। तुम्हें जंगल चलना पड़ेगा। राजकुमारी राजी हो जाती है। तब चोर साधु कहता है कि ठीक है, तुम अपने कीमती वस्त्र और आभूषण पहनकर जंगल में मेरे साथ अकेले चलो। उसके पश्चात् राजकुमारी शृंगार करके उसके साथ चली जाती है। वहाँ जाकर वह चोर साधु उसे एक पेड़ से रस्सी से बाँधकर कहता है कि देखो मैं ही तुम्हें छुड़ाने के लिये आऊँगा। तभी तुम मुक्त होना, चाहे दो दिन

लगे, चाहे पाँच दिन, चाहे कई दिन लगे। राजकुमारी मान जाती है। उसके बाद वह चोर साधु उसके सारे आभूषण निकाल लेता है और चला जाता है। वैराग्यवती बहुत निष्ठा के साथ उसकी प्रतीक्षा करती है कि गुरु आयेंगे और उसे मुक्त करेंगे। उसकी निष्ठा से भगवान विष्णु का सिंहासन डोलने लगता है। तब भगवान नारद मुनि से कहते हैं, देखो नारद जाकर पता करो कि क्यों मेरा सिंहासन डोल रहा है। अवश्य ही कोई भक्त मुझे पुकार रहा है। तब नारदजी धरती पर जाते हैं और वैराग्यवती से मिलते हैं। उसको कहते हैं कि पुत्री तुम्हें जो बाँधकर गया है, वह चोर था, मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा। तब वह कहती है – नहीं, मुझे तो मेरे गुरु ही मुक्त करेंगे। तब नारद कहते हैं कि तुम मुझे पहचानती हो? वह कहती है, हाँ, हमने पुराणों में पढ़ा है, इस प्रकार आपको पहचानते हैं, आप नारदजी हैं। तब नारदजी कहते हैं – मेरी बात का विश्वास करो, वह गुरु नहीं है, वह साधु नहीं है, वह चोर है। राजकुमारी – मैं ऐसे कैसे विश्वास कर लूँ कि मेरे गुरु चोर हैं? मैं दो दिन से भूखी यहाँ पर बँधी हुई हूँ और आज तीसरे दिन आपके दर्शन हो गए। कहते हैं कि नारदजी के दर्शन बड़ी कठिनाई से होते हैं, जबकि तीन दिन में मुझे आपके दर्शन हो गये, तो मैं कैसे मान लूँ कि मेरे गुरु झूठे हैं? मैं नहीं मानूँगी। नारदजी वापस आकर भगवान विष्णु से कहते हैं। तब भगवान विष्णु स्वयं वहाँ प्रगट होकर कहते हैं – पुत्री, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। अब मैं तुमको मुक्त कर देता हूँ। तब वैराग्यवती कहती है – नहीं, मैं तो अपने गुरु से ही मुक्त होऊँगी। भगवान कहते हैं – नहीं पुत्री, वह तो चोर है। वह तो चोरी करने के लिए आया था। वैराग्यवती कहती है – नहीं, मैंने तो उनको अपना गुरु माना है। अब वे ही मुझे मुक्त करेंगे। भगवान कहते हैं कि मेरी बात पर विश्वास करो, वह तो चोर था। तब वैराग्यवती कहती है – "हे भगवान ! मैं कैसे मान लूँ कि मेरा गुरु गुरु नहीं, बल्कि चोर है?" जब तीन दिन भूखे रहने के बाद मुझे नारदजी के दर्शन हो गये, जिसके लिये लोग जन्म-जन्म तक तपस्या करते हैं, मुझे उन भगवान के दर्शन हो गये। अब मैं कैसे मान लूँ कि मेरे गुरु झूठे हैं। तब भगवान नारद से कहते हैं, जाओ उस चोर साधु को लेकर आओ। नारदजी उस चोर साधु के पास पहुँचते हैं। वे उसे बताते हैं कि जिसके साथ उसने गुरु होने का स्वांग रचा था, वहाँ भगवान स्वयं प्रकट होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तब वह चोर साधु भयभीत हो जाता है और उस स्थान पर नहीं जाना चाहता। किन्तु नारदजी के बहुत समझाने पर और अभय देने पर उनके साथ उस स्थान पर जाता है। उस चोर साधु को भी तब ज्ञान होता है। गुरु-निष्ठा से शिष्य को तो लाभ हुआ, पर गुरु को भी लाभ हुआ। इसलिए गुरु-निष्ठा बहुत आवश्यक है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं कि हम अपने मिथ्या अभिमान को तिलांजलि दे दें – यह अभिमान कि हमें कुछ आध्यात्मिक ज्ञान है – और श्रीगुरु के चरणों में सम्पूर्ण आत्म-समर्पण कर दें। केवल श्रीगुरु ही जानते हैं कि कौन-सा मार्ग हमें पूर्णत्व की ओर ले जाएगा। हमें इस सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं है, हम कुछ भी नहीं जानते, इस प्रकार का यथार्थ नम्र भाव आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए हमारे हृदय के द्वार खोल देगा। जब तक हममें अहंकार का लेश मात्र भी रहेगा, तब तक हमारे मन में सत्य की धारणा कदापि नहीं हो सकती। तुम सबको यह अहंकार रूपी शैतान अपने हृदय से निकाल देना चाहिए। आध्यात्मिक अनुभूति के लिए सम्पूर्ण आत्मसमर्पण ही एकमात्र उपाय है।

रामकृष्ण संघ में गुरु पूर्णिमा का इतिहास : श्रीमत् स्वामी शंकरानन्द जी महाराज की महासमाधि के पश्चात् उनके शिष्यों ने उनके जन्मदिन के लिए बड़ा जन्मोत्सव का आयोजन किया। इसे सुनकर श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज ने कहा कि यदि इसी प्रकार लोग अपने-अपने दीक्षा गुरुओं के जन्मदिन का उत्सव मनायेंगे, तो संघ में भिन्न प्रकार की परम्परा चल पड़ेगी, इससे अच्छा है कि गुरु पूर्णिमा के दिन सभी गुरुओं का पूजन करें। उसके बाद से ही रामकृष्ण संघ में गुरु पूर्णिमा का आरम्भ हुआ। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, "गुरु को मनुष्य बुद्धि से नहीं देखना चाहिए, सच्चिदानन्द जी गुरु के रूप में आते हैं, गुरु-कृपा से इष्ट का दर्शन होता है, तब गुरु इष्ट में लीन हो जाते हैं।" श्रीरामकृष्ण के शिष्यगण उन्हें अपना गुरु तथा इष्ट दोनों ही मानते थे, इसलिए उनकी परम्परा में कोई भी गुरु स्वयं को गुरु नहीं मानते। सभी अपने को श्रीरामकृष्ण की साधना प्रणाली के धारक और वाहक मात्र मानते हैं। संघ में दिए जाने वाले जय में 'जय गुरु महाराज जी की जय' का सम्बोधन भगवान श्रीरामकृष्ण के लिये ही है। इस प्रकार आज भी रामकृष्ण रूपी वृक्ष की छाया में ही रामकृष्ण संघ समाहित है।

उपसंहार : गुरु कोई शरीर नहीं हैं, गुरु एक तत्त्व हैं।

शेष भाग पृष्ठ ३२९ पर

स्वामी ब्रह्मानन्द और भुवनेश्वर

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

(गतांक से आगे)

स्वामी ब्रह्मानन्द की यही विशेषता थी। कभी-कभी वे अपने मौन से, कभी मनोरंजक बातों से और जब चाहें तब अपनी आध्यात्मिक शिक्षाओं से लोगों को प्रभावित करते थे। उनसे मिलनेवाले सभी लोगों पर महाराज के आध्यात्मिक व्यक्तित्व की गहरी छाप पड़ती थी, फिर महाराज उन्हें कुछ भी क्यों न कहें। इसलिए जब हम अपनी युवावस्था में जब कभी भी उनसे मिले, तो हममें उनसे प्रश्न पूछने का साहस नहीं था। उन्हें देखना ही पर्याप्त था, इससे हमें पर्याप्त तृप्ति और आनन्द मिलता था। हमारे मन में उनके लिए प्रेम और सम्मान भरने के लिए यह पर्याप्त था और वह हमारे साथ जीवन भर बना रहा।[७१]

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज का कमरा, भुवनेश्वर

स्वामी सारदानन्द जी की हार्दिक इच्छा थी कि महाराज २० दिसम्बर, १९२१ को बेलूड़ मठ में श्रीमाँ सारदादेवी के मन्दिर की प्राणप्रतिष्ठा करें। लेकिन महाराज ने भुवनेश्वर मठ छोड़ने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। स्वामी सारदानन्द ने महाराज से बार-बार बेलूड़ मठ आने का अनुरोध किया। यद्यपि महाराज के बेलूड़ मठ जाने की कई बार व्यवस्था की गई, लेकिन यह सम्भव नहीं हुआ। अन्त में जब स्वामी सारदानन्द ने पत्र लिखकर बताया कि वे स्वयं उन्हें लेने आ रहे हैं, तो महाराज ने तुरन्त ही किसी से बेलूड़ मठ जाने की व्यवस्था करने को कहा। इसलिए ११ जनवरी, १९२२ को वे महापुरुष महाराज, रामलाल दादा और उनके सेवकों के साथ रात की रेलगाड़ी से कोलकाता हेतु प्रस्थान किये और अगले दिन बेलूड़ मठ पहुँचे। यह ओडिशा की उनकी अन्तिम यात्रा थी।[७२]

उस वर्ष श्रीरामकृष्ण के जन्मोत्सव के पश्चात् महाराज बेलूड़ मठ से बलराम मन्दिर चले गए। वहाँ वे हैजा और फिर मधुमेह से पीड़ित हो गए। विशेषज्ञ चिकित्सक अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास कर रहे थे। जब डॉ. नीलरतन सरकार उनकी जाँच करने आए, तो महाराज ने उनसे कहा, 'मुझे शीघ्र स्वस्थ कर दीजिए।' कभी-कभी वे अपने सेवकों से कहते थे, 'मुझे भुवनेश्वर ले चलो, वहाँ के कुएँ का पानी पीकर मैं स्वस्थ हो जाऊँगा। मुझे कलकत्ता की प्रदूषित हवा पसंद नहीं है, चलो भुवनेश्वर चलें, वहाँ हमें ताजी हवा मिलेगी।'[७३] अपने जीवन के अन्तिम समय में भी उन्हें भुवनेश्वर मठ जाने की तीव्र इच्छा थी। यह ओडिशा, विशेषकर भुवनेश्वर मठ के प्रति उनके अगाध प्रेम को दर्शाता है। १० अप्रैल, १९२२ को वे ब्रह्मलीन हो गये।

स्वामी ब्रह्मानन्द ने भुवनेश्वर के बारे में या भुवनेश्वर से विभिन्न लोगों को पत्र लिखे थे। ये पत्र ऐतिहासिक मूल्यों से भरे हुए हैं और इनसे पता चलता है कि महाराज ने भुवनेश्वर मठ की स्थापना के लिए कितना कठिन परिश्रम किया था। पाठकों के लिए हम इन पत्रों का सारांश तिथि और स्थान के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं –

१९१९, १३ अक्तूबर, कलकत्ता : भुवनेश्वर मठ का उद्घाटन आगामी १५ कार्तिक को किया जाएगा। इसीलिए हमने काली पूजा के बाद भुवनेश्वर जाने का निर्णय लिया है।

१९१९, २ नवम्बर, भुवनेश्वर : यहाँ भुवनेश्वर मठ के उद्घाटन का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। उत्तम रीति से निर्मित रमणीय मठ को देख मुझे अतीव हर्ष हुआ। यह स्थान अत्यन्त एकान्त में है। मुझे लगता है कि यहाँ का मौसम भी अच्छा है। कमरे बहुत बड़े और हवादार हैं। आपको समय मिलने पर यहाँ अवश्य पधारें। मैं यहाँ ठीक हूँ।

१९१९, ३ नवम्बर, भुवनेश्वर : नागपुरी संतरे की छह कलम तथा चंदन के चार पौधे कृपया भुवनेश्वर मठ

के लिए भेजें। इस सम्बन्ध में विशेषज्ञ से मार्गदर्शन लें, अन्यथा आप ठगे जाएँगे। पौधे भेजने से पहले मुझे सूचित करें, ताकि जब वे भुवनेश्वर स्टेशन पर पहुँचें, तो हम तुरन्त उन पौधों को ले आवेंगे। हम सभी यहाँ कुशल हैं। (मध्य प्रान्त के बिलासपुर निवासी प्रफुल्लनाथ रुद्र को लिखित)

१९१९, ६ नवम्बर, भुवनेश्वर : हम यहाँ भुवनेश्वर आये हैं। उत्तम रीति से निर्मित रमणीय मठ को देख मुझे अतीव हर्ष हुआ। कमरे बहुत अच्छे हैं, रोशनी तथा हवा के आवागमन से भरे हुए हैं। पहले भेजे गए दो लोहे के बर्तन यहाँ बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। कृपया शीघ्र ही ऐसे ही दो और बर्तन भेजें तथा मुझे उसका मूल्य भी बताएँ, ताकि हम उसका भुगतान कर सकें। यहाँ मेरा स्वास्थ्य कलकत्ता से बेहतर है। आपने जो घड़ी दी है, वह हॉल में टंगी हुई है तथा ठीक से काम कर रही है।

१९१९, ६ नवम्बर, भुवनेश्वर : कृपया भुवनेश्वर मठ के लिए यथासम्भव पायदान भेजें। कृपया फोटो भी शीघ्र भेजें, क्योंकि हमारे यहाँ ठाकुर का एक भी फोटो नहीं है। यदि सम्भव हो, तो सफेद चंदन भी भेजें, वह यहाँ बहुत उपयोगी होगा। इस बार मेरा मुंडन अमूल्य (स्वामी शंकरानन्द) ने किया है। यहाँ हमारा स्वास्थ्य ठीक है। (कभी-कभी राजा महाराज का मुंडन बोशी सेन करते थे।)

१९१९, ८ नवम्बर, भुवनेश्वर : आपके द्वारा भेजी गई मूर्ति का चित्र प्राप्त हुआ। हमें डे एण्ड सन्स द्वारा प्रेषित चार चित्र मिले हैं। बालाजी के दो चित्रों में से सबसे अच्छे फोटो को छोड़कर लगभग सभी अच्छी स्थिति में हैं। उस फोटो फ्रेम का काँच टूटा हुआ है।

१९१९, ८ नवम्बर, भुवनेश्वर : आपके द्वारा भेजी गई दो पायदान, एक तकिया और एक सफेद चंदन की लकड़ी प्राप्त हुई। यहाँ पायदान और सफेद चंदन बहुत उपयोगी होंगे। कल से यहाँ बादल छाये हैं और वर्षा हो रही है। आज भी वही मौसम बना हुआ है। मुझे लगता है कि कलकत्ता में भी ऐसा ही मौसम होगा।

१९१९, ३१ दिसम्बर, भुवनेश्वर : यहाँ भुवनेश्वर में काफी ठण्ड है। भुवनेश्वर मठ के लिए आपके द्वारा भेजे गए नागपुरी संतरे की पाँच कलम तथा चंदन के चार पौधे अच्छी स्थिति में बिना किसी क्षति के प्राप्त हुए। नागपुरी संतरे की एक कलम गायब है।

१९२०, १ जनवरी, भुवनेश्वर : सब्जियों की टोकरी बिना किसी हानि की अच्छी स्थिति में प्राप्त हुई। आपने सभी चुनी हुई अच्छी चीजें भेजी हैं। सभी को वे पसंद आईं और सभी आपकी प्रशंसा कर रहे हैं।

१९२०, ३ जनवरी, भुवनेश्वर : यहाँ भुवनेश्वर में मौसम बहुत अच्छा है। मुझे लगता है कि मैं यहाँ कलकत्ता से बेहतर हूँ। हम सभी यहाँ ठीक हैं।

१९२०, १८ जनवरी, भुवनेश्वर : मैं यहाँ भुवनेश्वर में बेहतर महसूस कर रहा था। कुछ दिन पहले मेरा पेट खराब था, पर अब मैं ठीक हूँ। चारदीवारी का काम चल रहा है और दस-पन्द्रह दिन में वह पूरा हो जाएगा। यहाँ सब कुछ कुशल-मंगल है।

१९२०, १९ जनवरी, भुवनेश्वर : आज सुबह रामबाबू कलकत्ता से यहाँ पहुँचे। वे बहुत दुर्बल हो गये हैं और उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। भगवान की कृपा से वे शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेंगे। आज मैंने एक आठ साल के विचित्र व्यक्ति को देखा। उसके पेट से एक पैर बाहर निकला हुआ है। उस में और एक अनोखी बात है। दो पैरों के ऊपर और लटके हुए पैर के नीचे एक ओर पुरुष का जननांग है और दूसरी ओर महिला का जननांग है। हम सब यह देखकर अचंभित रह गए। हमने पूर्व में ऐसा कभी नहीं देखा था। यदि तुम्हारी माँ मौसम परिवर्तन के लिए यहाँ आती हैं, तो उन्हें स्वास्थ्य लाभ हो सकता है।

१९२०, २३ जनवरी, भुवनेश्वर : मेरे प्रिय अमूल्य, आज हमें तुम्हारे भेजे गए रामनगर बैंगन, आँवला और गुलदाउदी के पौधे अच्छी स्थिति में प्राप्त हुए हैं। बैंगन के पौधे काफी अच्छे और आकार में बड़े हैं। हमने गुलदाउदी का पौधा आते ही लगा दिया है, हमें नहीं पता कि यह बढ़ेगा या नहीं। अन्दर की चारदीवारी का निर्माण-कार्य चल रहा है और इसे पूरा होने में दस से पन्द्रह दिन और लगेंगे। तुम अपने स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखो। मैं यहाँ ठीक ही हूँ। पिछले दो दिनों से यहाँ बादल छाए हुए हैं और कभी-कभी थोड़ी बूँदा-बाँदी हो जाती है। (वाराणसी में रह रहे स्वामी शंकरानन्द को लिखित)

१९२०, २७ जनवरी, भुवनेश्वर : मठ में पिछले कुछ दिनों से अन्दर की चारदीवारी का निर्माण-कार्य चल रहा है। वह आवश्यक था, क्योंकि बहुत निकट के क्षेत्र से

बाघ की दहाड़ नियमित रूप से सुनाई देती है। रात में सभी लोग बाहर निकलने से भी डरते हैं। इसलिए भीतरी दीवार का काम युद्ध स्तर पर आरम्भ किया गया था। ... पिछले कुछ दिनों से मुझे सर्दी लग रही है। पहले बुखार के कारण सिर में दर्द होता था। अब मैं बेहतर हूँ।

१९२०, ५ फरवरी, शशिनिकेतन, पुरी : पिछले पाँच दिनों से मैं पुरी में हूँ। कल मैं भुवनेश्वर वापस जाना चाहता हूँ।

१९२०, २८ फरवरी, भुवनेश्वर : भीतरी चारदीवारी का निर्माण-कार्य पूरा हो गया है, लेकिन रंग देने का काम अभी भी चल रहा है। रसोईघर की यहाँ बहुत आवश्यकता है। इसलिए मैं शीघ्र ही रसोईघर का निर्माण आरम्भ करना चाहता हूँ। मेरा स्वास्थ्य ठीक है।

१९२०, ९ मार्च, बेलूड़ मठ : अगले शुक्रवार तक मैं यहाँ व्यस्त रहूँगा। यहाँ का काम समाप्त होते ही मैं कलकत्ता जाऊँगा। मैं वहाँ तुमसे मिलना चाहता हूँ। उसके बाद मैं पुनः भुवनेश्वर लौटूँगा।

१९२०, ३ अप्रैल, भुवनेश्वर : मैं कुछ दिन पहले कलकत्ता से लौटा हूँ। मैं कुछ दिनों के लिए किसी काम से वहाँ गया था। चूँकि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था, इसलिए मैं शीघ्र ही वापस आ गया। यहाँ आने के बाद अब मुझे अच्छा लग रहा है।

१९२०, १६ अप्रैल, भुवनेश्वर : भुवनेश्वर मठ की बाहरी चारदीवारी का निर्माण-कार्य अब आरम्भ हो गया है।

१९२०, २२ जून, भुवनेश्वर : मेरे प्रिय अमूल्य, कल तुम्हारा पत्र मिला। कुछ दिन पहले मेरा पेट खराब था, लेकिन विशेष परहेज़ के कारण अब ठीक है। पिछले चार दिनों से यहाँ भारी बारिश हो रही थी। आज यहाँ धूप खिली हुई है। अब यहाँ मौसम थोड़ा ठण्डा है। सोराबजी मोदी की व्यवस्था के अनुसार, पादरी अब्बे हैमंड की दवाई से हरि महाराज अब ठीक हैं। यह अच्छा होगा, यदि वे इस दवा को लेने से पूरी तरह से स्वस्थ हो जाएँ। मुझे नियमित रूप से श्रीमाँ सारदादेवी का कुशल-मंगल समाचार मिलता रहता है। अच्छे डॉक्टर और वैद्य के उपचार से भी कोई लाभ नहीं हुआ है। यह सूचना पाकर मुझे उनकी चिन्ता हो रही है। इसलिए मैं उलटा रथ के बाद कुछ दिनों के लिए उनसे मिलने हेतु वहाँ जाने की सोच रहा हूँ। मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि तुम ठीक हो। इस वर्ष आम के अच्छे फले थे, लेकिन तूफान से कुछ क्षति हुई है। उत्तरी और पश्चिमी भाग को छोड़कर चारदीवारी का निर्माण-कार्य लगभग पूरा हो गया है। मन्दिर का काम अभी आरम्भ होना शेष है। हम अभी भी मन्दिर के काम के लिए पत्थरों की व्यवस्था कर रहे हैं। दवाखाने की छत पर टाइल लगाने का काम पूरा हो गया है। अब बचा काम किया जाएगा।

१९२०, ३१ अगस्त, भुवनेश्वर : आजकल मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। अन्य मौसमों की तुलना में वर्षा का मौसम यहाँ इतना अच्छा नहीं होता। चारों ओर लोग बीमार हैं। मठ का एक लड़का पिछले दस-बारह दिनों से बुखार से पीड़ित है। उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है। हम उसके कारण परेशान हैं। मुझे आशा है कि ठाकुर की कृपा से वह ठीक हो जाएगा।

१९२०, ८ सितम्बर, भुवनेश्वर : मुझे आपके द्वारा डाक से भेजा गया सुपारी का एक पाकेट पाकर प्रसन्नता हुई। मैं भुवनेश्वर में इसलिए आया हूँ, क्योंकि यहाँ एक नया मठ स्थापित किया जा रहा है।

१९२०, २० सितम्बर, भुवनेश्वर : मेरे प्रिय अमूल्य, मैं हरि महाराज के स्वास्थ्य के बारे में चिन्तित था। लेकिन काली बाबू के पत्र से मुझे थोड़ी राहत मिली। जब तक उनका घाव पूरी तरह से सूख नहीं जाता, तब तक सेप्टिक होने की सम्भावना है। जूता पहनने से मेरे दाहिने पैर में घाव हो गया है। बाद में घाव में सेप्टिक हो गयी तथा वह पैर सूज गया। बोरिक कम्पाउन्ड लगाने से घाव ठीक हो गया, लेकिन टखने के जोड़ के पास सूजन है और दर्द हो रहा है। पिछले कुछ दिनों से मुझे चलना भी बन्द करना पड़ रहा है। हाँलाकि नियमित मालिश से दर्द कम हो गया है, लेकिन मैं अभी भी चलने में असमर्थ हूँ। मुझे आशा है कि मैं कुछ दिनों में ठीक हो जाऊँगा। इस वर्ष यहाँ बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही है। इसलिए यहाँ का मौसम और पानी बहुत अच्छा नहीं है। अन्यथा यहाँ सब ठीक है। टावर का काम चल रहा है।

१९२०, १६ अक्तूबर, भुवनेश्वर : मेरे प्रिय अमूल्य, आजकल मैं ठीक हूँ, लेकिन यहाँ का मौसम बहुत अच्छा नहीं है। यहाँ निर्माण-कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। यह सुनकर खुशी हुई कि हरि महाराज का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन

बेहतर हो रहा है। उन्हें मेरा स्नेह और नमस्कार कहना।

१९२०, २८ नवम्बर, भुवनेश्वर : कल तुम्हारी माँ के निधन का दुखद समाचार पत्र द्वारा प्राप्त हुआ। इतनी वृद्धावस्था में वह आप सबको खुशी-खुशी छोड़ कर जा सकी, यही बड़ी बात है। पुत्र होने के नाते जो करना आवश्यक है, वह तुम करो और गया में यथासमय उनका श्राद्ध करो। मैं दस-बारह दिन में कलकत्ता चला जाऊँगा।

१९२०, २९ नवम्बर, भुवनेश्वर : मेरे प्रिय नीरद, मुझे तुम्हारे पत्र के साथ, 'सेइंग ऑफ श्रीरामकृष्ण' (द्वितीय संस्करण) पुस्तक और उसके तमिल अनुवाद की एक प्रति मिली। यह संस्करण बहुत अच्छा हुआ है। टावर निर्माण का कार्य लगभग पूरा हो चुका है। केवल कुछ छोटा-मोटा काम बचा है। रसोईघर का निर्माण हो गया है। मैं यहाँ स्वस्थ हूँ। मैं एक बार कलकत्ता जाना चाहता हूँ।

१९२०, २० दिसम्बर, वुडलैंड, अलीपुर, कलकत्ता : कल दोपहर मैं यहाँ पहुँचा। यह बहुत ही एकान्त स्थान है, यह तुम जानते ही हो। मेरा स्वास्थ यहाँ ठीक है। आज सुबह मैं दर्शन के लिए कालीघाट गया था। दर्शन बहुत अच्छा हुआ। मैं यहाँ ठीक हूँ।

१९२१, १ जनवरी, भुवनेश्वर : प्रिय नीरद, मुझे रेलवे पार्सल द्वारा संतरे अच्छी हालत में मिले। संतरे बड़े अच्छे हैं। कुछ दिनों बाद खाने से वे और भी मीठे लगेंगे। मैं यहाँ अच्छा हूँ। ३ जनवरी को मैं कलकत्ता जाने की सोच रहा हूँ। लौकी की पुरानी लता अच्छा फल दे रही है, लेकिन वाल की फल्लियाँ आने में थोड़ा समय लगेगा।

१९२१, १३ जनवरी, कलकत्ता : प्रिय अमूल्य, तुम्हारा पत्र मिला। सब कुछ ठीक रहा, तो मैं आनेवाले बुधवार यानी ६ माघ को वाराणसी जाना चाहता हूँ। मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि अब तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा है। मैं भी ठीक हूँ।

१९२१, २९ अगस्त, बैंगलोर : प्रिय अमूल्य, तुम्हारा पत्र मिला। पता चला कि न तो वाराणसी में और न ही कलकत्ता में तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है। तुम्हारी खाँसी और शरीर के विभिन्न अंगों में दर्द के लिए यदि तुम किसी अच्छे डॉक्टर या वैद्य द्वारा बताई गई दवा ले सको, तो तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे। ... यदि कलकत्ता में तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, तो यदि तुम चाहो तो स्वास्थ्य-लाभ के लिए भुवनेश्वर आ सकते हो। मैंने तुम्हें पहले ही कहा है कि जब भी सम्भव हो, तुम लोग भुवनेश्वर आकर रहा करो। यद्यपि आजकल खराब मौसम के कारण वहाँ लोग ज्वर से पीड़ित हैं। यदि तुम थोड़ी सावधानी बरतो, तो तुम्हें कुछ नहीं होगा। मैंने भुवनेश्वर मठ के लिए धन इकट्ठा करने के लिए कठिन परिश्रम किया है, ताकि पाँच से सात लोग वहाँ आराम से रह सकें। ठाकुर की कृपा से मैं इस कार्य में पर्याप्त सीमा तक तक सफल रहा हूँ। जब यह कार्य पूरा हो जाएगा, तो मुझे प्रसन्नता होगी। भुवनेश्वर मठ तुम लोगों का ही है, तुम लोग यहाँ बार-बार आकर रहो।

(ध्यान देने योग्य बात यह है कि भुवनेश्वर मठ का निर्माण करने के उपरान्त स्वामी शंकरानन्द (अमूल्य महाराज) का स्वास्थ्य खराब हो गया था और स्वास्थ्य लाभ के लिए वे वाराणसी गये थे। उन्होंने अपने गुरु स्वामी ब्रह्मानन्द के आदेशों का पूरी तरह से पालन किया। वे अपने अन्तिम समय तक बार-बार भुवनेश्वर आते रहे।)

१९२१, ९ सितम्बर, बैंगलोर : तुम्हारा पत्र मिला। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि अपच की बीमारी से मुक्त होने के लिए तुम दुर्गापूजा की छुट्टियों में भुवनेश्वर मठ आना चाहते हो। कोई समस्या नहीं है, किन्तु आजकल लोग वहाँ ज्वर से पीड़ित हैं, वहाँ मौसम अच्छा नहीं है। कार्तिक के अन्त से लेकर अग्रहायण के प्रारम्भ तक वहाँ का मौसम अच्छा नहीं रहता। इसलिए मुझे लगता है कि अगर तुम इसके बाद वहाँ जाओ, तो अच्छा होगा। मैं वहाँ का अपना अनुभव बता रहा हूँ। भुवनेश्वर में मौसम भाद्र और आश्विन इन दो महीनों को छोड़कर पूरे वर्ष बहुत अच्छा रहता है। स्वास्थ्य-लाभ तथा जलवायु परिवर्तन के लिए तुम वाल्टियार या मद्रास आ सकते हो। ये स्थान अपच के लिए अच्छे हैं। यदि तुम मद्रास आते हो, तो मैं वहाँ तुम्हारे रहने की व्यवस्था कर दूँगा।

१९२१, १५ नवम्बर, मद्रास : आगामी शनिवार १९ नवम्बर को, हम कलकत्ता मेल द्वारा अपनी वापसी यात्रा करना चाहते हैं। हम सीधे भुवनेश्वर जाएँगे। वाल्टियार में रुकने के बारे में अभी कुछ निश्चित नहीं हुआ है। बाद में तुम्हें मैं सूचित करूँगा।

१९२१, १९ नवम्बर, मद्रास : हम आज शाम ७

शेष भाग पृष्ठ ३२९ पर

आध्यात्मिक प्रगति हो रही है कि नहीं कैसे समझें?

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

प्रश्न : आध्यात्मिक जीवन में हमारी प्रगति नहीं हो रही है। यदि हो रही है, तो कैसे इसे समझें? यदि नहीं हो रही है, तो किसके सहारे उन्नति करें?

उत्तर – आध्यात्मिक जीवन में हमारी प्रगति हो रही है। इसका सबसे बड़ा प्रमाणपत्र है कि आप इस भक्त सम्मेलन में आये हैं। नहीं तो क्यों आते आप? आप पैसे देकर आये हैं। इतना समय यहाँ दे रहे हैं। इसका अर्थ है कि आपकी इसमें रुचि है। आध्यात्मिक जीवन में प्रगति हो रही है कि नहीं हो रही है, इस ओर दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। दृष्टि इस ओर रखनी चाहिए कि प्रगति करने के लिए जो करना चाहिए, हम वह कर रहे हैं या नहीं कर रहे हैं। जैसा गुरु ने बताया है, उस प्रकार से साधना करने से आध्यात्मिक उन्नति होगी।

आध्यात्मिक जीवन में यदि आप उन्नति चाहते हैं, तो अपने आपसे पूछिये कि क्या मूल्य दिया है उसके लिए? जीवन में आज जो उपलब्धियाँ, जो धन आपने संचय किया है, जो सम्मान आपने संचय किया है, जो मकान-सम्पत्ति आपने खरीदी है, कितने वर्ष लगे उसमें? कितने वर्षों के साथ आपने उसके लिये अपने जीवन का सर्वस्व दे दिया। किसी को खाने-पीने का समय नहीं है, बच्चों के लिए समय नहीं है, किसी को शादी-ब्याह में जाने का समय नहीं है, नया मकान बनाना है, नयी गाड़ी खरीदनी है, इस प्रकार आपने जीवन का सर्वस्व लगा दिया, तब आपको यह सांसारिक उपलब्धि मिली। किन्तु आध्यात्मिक जीवन में आपने क्या किया? चौबीस घण्टे में बड़ी मुश्किल से सुबह-शाम मिलाकर चौबीस मिनट आपने निकाला। सप्ताह में सात दिन के बदले वर्ष में मात्र तीन दिन आप आये और आप चाहते हैं कि द्रुत गति से आध्यात्मिक उन्नति हो जाये ! ऐसा नहीं हो सकता।

स्वामी विरजानन्द जी महाराज हमारे संघगुरु थे। बहुत बड़े महापुरुष थे। एक दिन वे बेलूड़ मठ से दक्षिणेश्वर जा रहे थे। उसी समय हमारे संघ के एक बहुत बड़े साधु स्वामी बोधात्मानन्द जी महाराज, जो ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र के प्राचार्य थे। तब मठ में इतनी सुविधाएँ नहीं थीं। वे बाहर से आये थे। नल की इतनी सुविधा नहीं थी, लोग गंगा में मुँह धोने जाते थे। वे गये तो देखा कि महाराज नाव में बैठे हैं। उन्होंने प्रणाम किया। इतना बड़ा सौभाग्य! उन्हें विरजानन्द जी महाराज के साथ जाने का सौभाग्य मिले, तो क्या कहना ! उन्होंने पूछा महाराज, आपकी कृपा हो, तो मैं भी साथ में चलूँ। वे साथ में जाने लगे। नौका में महाराज हैं, सेवक हैं, एक-दो और कोई भक्त हैं। इनको भी अवसर मिला, साथ में जा रहे हैं।

महाराज चुपचाप बैठे हैं। थोड़ी देर बाद उनका मन नीचे आया, तो उन्होंने पूछा – 'भव, कैसे हो तुम?' भव महाराज ने कहा – महाराज, आपकी कृपा से सब ठीक ही है। एक जिज्ञासा है – गुरु ने जो बताया है, उस अनुसार तो हम सब चेष्टा कर रहे हैं, जप-ध्यान या जो कुछ भी हो आपके आशीर्वाद से हर सम्भव प्रयास कर रहे हैं, पर कुछ कमी रह गयी है, ऐसा लगता है। यह बात विरजानन्द जी महाराज ने सुनी। विरजानन्द जी महाराज ने बोधात्मानन्द जी महाराज से कहा – 'देखो तुम जप, ध्यान, तपस्या कर रहे हो, यह अच्छी बात है। किन्तु ईश्वर को प्राप्त करना हो, तो पूरा मन, प्राण, शरीर, सारी शक्ति, सर्वस्व दे देना पड़ता है। अपनी सारी शक्ति से तुम अपनी साधना में लग जाओ। जो सब कुछ देता है, उसको सब कुछ मिलता है।'

हम सबके जीवन में भी यही बात है। इसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन में भी प्रगति कैसे हो, उसके लिए नियमित जो उपाय हैं, उन पर अधिक ध्यान देना चाहिए। जीवन को कठिन मत बनाइये कि उसने मुझे यह कहा, उसने किसी को मेरे पीछे लगा दिया। गुरु के द्वारा प्रदत्त निर्देशों का पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ पालन कीजिये, आध्यात्मिक प्रगति समझ में आने लगेगी। ○○○

गुरु-पूर्णिमा विशेष

गुरु महिमा अपरम्पार

स्वामी सत्कृतानन्द

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर, छ.ग.

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय।।

जब गुरु और गोविन्द; दोनों एक साथ साधक के सामने आ जाएँ, तो साधक दुविधा में पड़ जाता है कि किन्हें पहले प्रणाम करूँ। कबीरदासजी ने अपने इस दोहे में आगे इसका उत्तर देते हुए कहा है – अगर गुरुदेव न होते तो, भगवान को (गोविन्द को) तो वह पहचान नहीं पाते। इसलिये गुरुदेव ही सबसे पहले प्रणम्य हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं –

"गुरु की पूजा भगवान के रूप में करनी चाहिये। वे भगवान हैं, इससे कम कुछ भी नहीं हैं। जब आप उनकी ओर देखते हैं, तो धीरे-धीरे वे लुप्त हो जाते हैं और जो बचता है, वह क्या है? गुरु की प्रतिमा स्वयं भगवान को प्रकट करने का स्थान देती है। गुरु भगवान का उज्ज्वल मुखौटा है, जिसे भगवान हम तक पहुँचने के लिये धारण करते हैं। जैसे-जैसे हम निरन्तर गुरु को देखते हैं, वैसे-वैसे यह मुखौटा गिर जाता है और भगवान प्रकट हो जाते हैं।" (२९ मार्च १९०० सैन फ्रांसिस्को में दिया गया प्रवचन – Discipleship)

जब भगवान हमारे समक्ष आने की ठान लेते हैं, तो वे गुरु बन जाते हैं और हमलोग किस प्रकार से उनकी प्राप्ति कर सकते हैं, उस विशेष पथ का हमें भलीभाँति निर्देश करते हैं। इसीलिए तो गुरु परम दाता कहलाते हैं। गुरुदेव अपनी कठिन से कठिन साधनाओं से अर्जित आध्यात्मिक सम्पदा को शिष्यों में बाँटकर उनका उद्धार करते हैं।

श्रीरामकृष्ण देव हमें सिखाते हैं – "सच्चिदानन्द ही गुरु हैं। यदि कोई मनुष्य गुरु के रूप में तुम्हारा चैतन्य जागृत कर दे, तो जानो कि सच्चिदानन्द ने ही उस रूप को धारण किया है। गुरु मानो सखा हैं। हाथ पकड़कर ले जाते हैं।" (श्रीरामकृष्ण-वचनामृत २२ अप्रैल, १८८३)

"सच्चिदानन्द ही गुरु रूप में आते हैं। मनुष्य गुरु से यदि कोई दीक्षा लेता है, तो उन्हें मनुष्य मानने से कुछ नहीं होगा। उन्हें साक्षात् ईश्वर मानना होगा, तभी मन्त्र पर विश्वास होगा। विश्वास हुआ कि सब कुछ हो गया।" (श्रीरामकृष्ण-वचनामृत २२ सितम्बर १८८३)

गुरुदेव के मुखारविन्द से निकले उपेदशों एवं शास्त्रों में निर्दिष्ट उपदेशों को सत्य समझ कर साधन करने से ही साधक सफलता की प्राप्ति कर पाता है।

शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यावधारणम्।
सा श्रद्धा कथिता सद्भिः यया वस्तूपलभ्यते।।

(विवेकचूडामणि, श्लोक २५)

अद्वैत वेदान्त हमें सिखाता है कि हर जीवात्मा मूलत: परमात्मा ही है, जीव शिव है, इनमें भेदभाव तो अज्ञान से होता है। सारा जगत विचित्र नाम-रूप तथा आकृति से भरा उस एक ब्रह्म का ही विविध प्रकाश है। एक ही सत्य है, कोई भेद नहीं है। वहीं अद्वैत वेदान्त कहता है – भले ही सारे जीव और जगत से तुम अभेद भावना रखो, पर गुरु-चरण में नतमस्तक होना सीख लो – **नाद्वैतम् गुरुणा सह**। गुरु कृपा से ही अद्वैत सिद्धान्तों का अभ्रान्त और निश्चयात्मक अनुभव सम्भव होता है।

छान्दोग्य उपनिषद में (चतुर्थ से नवम खण्ड) जाबाल सत्यकाम की कथा है। सत्यकाम ज्ञान प्राप्त करने गुरुगृह को आए। पर गुरुदेव ने उनको गायों को चराने भेजा। गुरु की आज्ञा मानकर सत्यकाम कई वर्षों तक जंगलों में ही रहकर गायें चराते रहे। गुरुभक्ति से ओतप्रोत सत्यकाम के अन्त:करण से धीरे-धीरे अज्ञान दूर होता गया और उन्होंने सबसे ऊँचे, सबसे पावन ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति की।

भगवान शंकराचार्य के एक शिष्य थे गिरि। उनमें प्रखर बुद्धि और प्रतिभा का अभाव था, पर वे सच्ची निष्ठा से श्रीगुरु की दिन-रात अथक सेवा करते थे। एक दिन गिरि नदी के किनारे गुरुजी के वस्त्रों को धो रहे थे। दैनिक प्रवचन का समय हो गया। सभी शिष्य आकर गुरु के सामने बैठ गये, पर आचार्य शंकर ने प्रवचन प्रारम्भ नहीं किया और गिरि की प्रतीक्षा करने लगे। यह बात दूसरे दिग्गज शिष्यों से सहन नहीं हुई। वे लोग गिरि की योग्यता को लेकर परिहास करने लगे। यह सुनकर गुरु मन ही मन दुखित हुए। दयानिधान

गुरु ने गिरि पर कृपा की। गिरि के हृदय में सर्ववेदान्तसिद्धान्त तत्काल ही स्फुरित हो गया। अपूर्व आनन्द से भरे गिरि के हृदय से संस्कृत तोटक छन्दों में गुरु वन्दना मानो स्वत: झंकृत हुई। मूर्खप्राय गिरि बने सर्वजन पूज्य तोटकाचार्य।

गुरुसेवा और गुरुभक्ति का बड़ा ही अद्‌भुत दृष्टान्त मिलता है तिब्बतीय महासाधक मिला रेपा के जीवन में। उन्होंने जब गुरु से आध्यात्मिक ज्ञान की माँग की, तो सबसे पहले गुरु ने उन्हें खेती करने का आदेश दिया। आदेशों का पालन होने पर गुरुजी के आश्रम में रहने को स्थान मिला, किन्तु बाहर जाकर भिक्षा माँगनी पड़ती। यहाँ तक कि कुछ भी भूल-चूक होने पर गुरुजी पिटाई भी करते। एक दिन गुरुजी ने मिला रेपा को अपने हाथों से एक मकान बनाने का आदेश दिया। मिला रेपा गुरु-आज्ञा पालन करने में लग गए। अपनी पीठ पर पत्थर ला-लाकर मिला रेपा गुरुजी का घर बना रहे थे। अब घर पूरा होने ही वाला था कि गुरुजी ने आकर कहा – घर सही नहीं बना है। इसे तोड़कर इसके हर एक पत्थर को वापस रख दो। बिना किसी प्रतिक्रिया के मिला रेपा ने वह भी किया। एक बार नहीं, यही घटना मिला के साथ एक के बाद एक करके तीन बार हुई, पर उनकी गुरु के प्रति निष्ठा अचल रही। उसके बाद गुरुजी ने मिला को दीक्षा दी और अपना आध्यात्मिक उत्तराधिकार सौंपा। प्रेम-करुणा-दया और मैत्री भावना से पूर्ण मिला रेपा एक दिव्य पुरुष बन गए।

गुरु रुद्र-महेश्वर बनकर शिष्यों का पाप भस्म करते हैं। गुरु विष्णु बनकर शिष्यों की विपदा छिन्न करते हैं। शिष्यों के शोधित अन्त:करण में गुरु ब्रह्मा बनकर विमल ज्ञान का प्रकाश भर देते हैं, जिससे मोह का घना अन्धकार हमेशा के लिये दूर हो जाता है। 'वाहे गुरुजी की फतेह' – जय श्रीगुरु महाराज ! OOO

पृष्ठ ३२२ का शेष भाग

दीक्षा-गुरु के देह-त्याग करने पर क्या गुरु समाप्त हो जाते हैं? नहीं, ऐसा नहीं होता। क्योंकि गुरु-तत्त्व अमर होता है। गुरु को किसी उपमा के माध्यम से समझ पाना दुष्कर है। क्योंकि गुरु की तुलना किसी से की जा सके, ऐसी कोई उपमा नहीं मिलती। यदि कहा जाये कि गुरु पारस पत्थर के समान हैं, तो भी नहीं। क्योंकि पारस तो लोहे को सोना बना देता है, पारस नहीं। परन्तु गुरु तो शिष्य को गुरु या उस के आत्मस्वरूप में स्थित कर देते हैं। इसलिये गुरु के सम्बन्ध में हम कितना भी क्यों न लिख दें, किन्तु गुरु की महिमा को पूर्णत: लिखना असम्भव है। संत कबीर भी कहते हैं –

सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार।।

अत: हमारा कर्तव्य है कि गुरु को देह बुद्धि से न देखें, बल्कि ईश्वर या इष्ट की दृष्टि से ही देखें और उनके शरणागत होकर अपने मनुष्य जीवन को धन्य करें। OOO

पृष्ठ ३२६ का शेष भाग

बजे अपनी वापसी यात्रा आरम्भ करेंगे। सभी लोग सामान बाँधने में व्यस्त हैं।

१९२१, ३ दिसम्बर, भुवनेश्वर : मैं बहुत शीघ्र कलकत्ता जाने की सोच रहा हूँ। मैं वहाँ कुछ दिन रुकूँगा और बहुत दिनों बाद भक्तों से मिलूँगा।

१९२१, २६ दिसम्बर, भुवनेश्वर : सब कुछ ठीक रहा, तो हमने ३ जनवरी, १९२२ को रात्रि एक्सप्रेस से कलकत्ता के लिए अपनी यात्रा करने का निर्णय लिया है। हम अगले दिन सुबह कलकत्ता पहुँचेंगे।

१९२२, ८ जनवरी, भुवनेश्वर : मैं कुछ दिनों में कलकत्ता जाऊँगा, इसलिए मैंने तुम्हें भुवनेश्वर नहीं बुलाया।

१९२२, १४ जनवरी, बेलूड़ मठ : मैं यहाँ स्वस्थ हूँ। मुझे लगता है कि यहाँ भुवनेश्वर से अधिक ठण्ड है। मैं बहुत सावधानी बरतता हूँ और हमेशा गरम कपड़े पहनता हूँ तथा सुबह धूप में बैठता हूँ।[७४] OOO **(समाप्त)**

सन्दर्भ – ७१. स्वामी ब्रह्मानन्द अॅज वी सॉ हिम (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी आत्मश्रद्धानन्द पृष्ठ-१३२-१३३ **७२.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) लेखक-स्वामी प्रभानन्द पृष्ठ-३५२-३५३, ३८१-३८२ **७३.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) लेखक-स्वामी प्रभानन्द पृष्ठ-३५७ **७४.** स्वामी ब्रह्मानन्देर पत्रसंभार (बंगाली) संपादक-स्वामी ऋतानन्द.

गीतातत्त्व-चिन्तन

तेरहवाँ अध्याय (१३/९)

स्वामी आत्मानन्द

मन में प्राणवत्ता नहीं है, वरन् मन आत्मा की प्राणवत्ता को प्रतिबिम्बित करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि समाधि अवस्था में जब मनुष्य का आत्मा के साथ साक्षात्कार होता है, तब उसके ज्ञान की उस समय की तीव्रता से सूक्ष्म-शरीर और कारण-शरीर जलकर भी तब तक विद्यमान रहते हैं, जब तक प्रारब्ध कर्म के द्वारा प्राप्त उसका स्थूल-शरीर चलता रहता है, जब तक प्रारब्ध कर्म की गति विद्यमान रहती है। सूक्ष्म-शरीर और कारण-शरीर के ज्ञानाग्नि से न जलने की स्थिति में तो मनुष्य के स्थूल-शरीर की मृत्यु होते ही ये दोनों उसमें से निकलकर नवीन शरीर धारण करते और इसी प्रकार जन्म से जन्मान्तर की प्रक्रिया चलती है। पर जब ज्ञान हो गया और उसकी अग्नि से सूक्ष्म-शरीर और कारण-शरीर दग्ध हो गए, तब तो स्थूल-शरीर के समाप्त होते ही, ये दोनों भी समाप्त हो जायेंगे। इनका कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। जीवत्व समाप्त हो जायेगा। इसी को हम विदेह मुक्ति की अवस्था कहते हैं। अनेकानेक योनियों में भटकता हुआ जीव अन्त में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। जिसे जीवन का परमोच्च उद्देश्य कहते हैं, वह यही मुक्ति की अवस्था है। इस स्थिति को आप चाहे किसी भी नाम से पुकारें – ज्ञान की अवस्था, परम ज्ञान की अवस्था या आत्मा से साक्षात्कार की अवस्था। जीव एक स्थूल-शरीर को छोड़कर दूसरे नए स्थूल-शरीर में प्रवेश करता है। उसका नया-नया जन्म होता रहता है। प्रत्येक जन्म में आगे के जन्म की तैयारी करता है। इसी गीता में हम पढ़ ही चुके हैं कि मनुष्य अपने जीवन में साधना करता है और एक जन्म में यदि उसकी साधना पूरी नहीं हुई और बीच में ही यदि उसकी मृत्यु हो गई, तो वह साधना नष्ट नहीं होती। जहाँ तक उसने साधना की है, वहाँ तक की उसकी साधना सुरक्षित रहती है। जब उस जीव का नया जन्म होता है, तब वह पिछले जन्म में जहाँ तक साधना कर पाया था, वहीं से पुन: उसका सूत्र पकड़ लेता है और आगे बढ़ चलता है। उस नये जीवन में साधना करता है।

पुनर्जन्म एक वैज्ञानिक सत्य

पुनर्जन्म की मान्यता हिन्दू धर्म में तो है, पर विश्व के अन्य धर्मों में नहीं है। फिर भी कुछ ऐसी घटनाएँ प्रकाश में आई हैं कि बच्चों ने अपने पिछले जन्म के विषय में जो बातें बताईं, वे अक्षरश: सत्य थीं। पुनर्जन्म को न मानने के कारण विज्ञान ने उसे extra-sensory perception – अतीन्द्रिय-दर्शन का नाम दिया। यह बात यदि होती, तो एक साथ एक से अधिक बालकों को उस अतीन्द्रिय-दर्शन (स्मृति) का बोध होना चाहिए था। पर वैसा कभी नहीं हुआ। इसलिए विज्ञान का यह सिद्धान्त निराधार है और यह बात भी है कि एक बच्चे में जब अतीन्द्रिय स्मृति आई, तो वह एक ही प्रकार की क्यों आई? उसे एक से अधिक प्रकार के extra-sensory perception क्यों नहीं हुए? जिस तरह विज्ञान के आयाम विस्तृत हो रहे हैं, बहुत सम्भव है कि पुनर्जन्म की घटना विज्ञान की कसौटी पर कसी जाकर साबित भी हो जाए।

हिन्दू धर्म इन्हीं दो सिद्धान्तों पर खड़ा है – १. पुनर्जन्मवाद २. कर्मवाद। इन दोनों सिद्धान्तों के बिना जीवन की व्याख्या की ही नहीं जा सकती। यद्यपि आजकल बाहर का विज्ञान, जैव-विज्ञान बड़ा प्रकट है। बहुत गवेषणाएँ हो रही हैं। डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त में भी बहुत परिवर्तन हुआ है, संशोधन हुआ है। पहले तो डार्विन इस विकास के प्रवाह का कोई लक्ष्य नहीं मानते थे। परन्तु आज के जैव-विज्ञानी जैसे जूलियन, हक्सले ऐसा मानते हैं कि विकास का प्रवाह किसी एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही सतत बह रहा है। पहले इस प्रवाह को यान्त्रिक माना जाता था, अब इसको अधिक मानसिक माना जाता है। हम यह मानते हैं कि जीव मुक्ति की ओर अग्रसर हो रहा है। हमारे भीतर अनन्त पवित्रता है। हमारे भीतर वह ब्रह्म ही छिपा है, अप्रकट है, तो हम ये भिन्न-भिन्न प्रकार के जन्म ग्रहण करते हैं। उनके द्वारा हम अपने भीतर के ब्रह्मभाव को पूर्णता से प्रकट करने का प्रयास करते हैं। इस जन्म में थोड़ा-सा प्रकट हो पाया, अगले में और अधिक, उससे और अगले में और अधिक। इस प्रकार एक ऐसा जन्म होता है, जिसमें हमारा सारा आवरण दूर हो जाता है और हम उस समूचे ब्रह्म को प्रतिफलित कर पाते हैं। या ऐसा कहें कि हमारा जो

मनोयन्त्र है, यह मनरूपी दर्पण है। वह भी बहुत अधिक धूल की परत से ढका हुआ है। एक जन्म में हम उसे थोड़ा-सा साफ कर पाते हैं। अगले जन्म में उससे थोड़ा अधिक साफ कर सकेंगे। उससे अगले जन्म में और बहुत अधिक साफ कर लेंगे। एक जन्म ऐसा आएगा कि हम अपने इस मन-दर्पण को पूरी तरह से साफ करके जगमगा देते हैं, धूल का एक कण भी नहीं रहने देते। तब वह आत्मा को पूरी तरह से प्रतिबिम्बित करता है और उस प्रक्रिया में स्वयं जलकर नष्ट हो जाता है। सूक्ष्म-शरीर और कारण-शरीर नष्ट हो जाते हैं। तब जो मृत्यु आती है, वह परम ज्ञानी की मृत्यु होती है। मृत्यु के न आने तक वह जीव जीवन्मुक्त होकर रहता है। शरीर जब नष्ट होता है, तब वह विदेहमुक्ति का अधिकारी हो जाता है। अब यह जीव आवागमन के चक्कर में नहीं पड़ता। सूक्ष्म-शरीर और कारण-शरीर के सम्मिलन से बननेवाला वह जीव है, जिसके कारण आवागमन चलता रहता है। इन दोनों के जल जाने पर आवागमन का चक्र ही समाप्त हो जाता है। उस जीव की मुक्ति हो जाती है, उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

मानसिक एकाग्रता की साधना (ध्यान) के बिना क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ तत्त्व की अनुभूति असम्भव

भगवान क्षेत्रज्ञ उसे कहते हैं, जो प्राण के रूप में, चैतन्य के रूप में प्रकट होता है। स्थूल-शरीर, सूक्ष्म-शरीर, कारण-शरीर; ये सब के सब क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। सूक्ष्म-शरीर के द्वारा प्रतिबिम्बित जो चैतन्य-धर्म है, जो प्राणवत्ता है, जिसके कारण यह सारा खेल चल रहा है, उसे ही क्षेत्रज्ञ कहते हैं। क्षेत्रज्ञ को हम उतनी सरलता से पकड़ नहीं पाते हैं, जितनी सरलता से क्षेत्र को पकड़ लेते हैं। प्राण की कल्पना भले ही कर लें, पर उसका ठीक-ठीक बोध नहीं होता। भगवान कहते हैं, 'मैं ही क्षेत्र हूँ, मैं ही क्षेत्रज्ञ हूँ।' उस क्षेत्रज्ञ को समझने के लिए भगवान आवश्यक समझते हैं कि हम कुछ साधनाओं में से होकर जाएँ। साधना किए बिना क्षेत्रज्ञ को समझा नहीं जा सकता। क्षेत्रज्ञ का प्रतिबिम्ब तो पड़ता है, पर उस प्रतिबिम्ब को पकड़ना, उसकी ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करना सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ आप तालाब तक गए। तालाब में नहाने के लिए उतरे। तालाब का पानी जोरों से हिलने लगा। उस तालाब की तलहटी में कुछ वस्तुएँ पड़ी हैं, यह तो समझ में आता है, पर पानी के हिलने के कारण वे वस्तुएँ टेढ़ी-मेढ़ी दिखाई देती हैं। हमारी पहचान में नहीं आतीं। जब जल शान्त हो जाता है, तब वही वस्तुएँ अपने सही रूप और आकार में दिखाई देने लगती हैं और हमारी पहचान में आने लगती हैं।

इसी प्रकार जब तक यह मनोयन्त्र पूरी तरह साफ नहीं होता, तब तक वैसा ही अपारदर्शी, चंचल रहता है और उसमें पड़ा हुआ आत्मा का प्रतिबिम्ब टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई देता है। हम उसे पहचान नहीं पाते। कब पहचानेंगे? जिस समय मनोमय पूरी तरह शान्त होगा, तब। जैसे जल के शान्त होने पर उसके भीतर की वस्तु बिल्कुल साफ दिखाई देती है। जिस समय यह मनोयन्त्र शान्त हो करके आत्मा को उसके सही रूप में प्रतिबिम्बित करता है, उसी समय अपने तेज से दग्ध हो जाता है। इसीलिए भगवान अर्जुन से कहते हैं कि मैं मौखिक रूप से बता तो दूँगा कि क्षेत्रज्ञ क्या है, पर जब तक वह साधना के द्वारा अपने मनोयन्त्र को जल की तरह अचञ्चल और दर्पण की तरह पूर्णतया स्वच्छ नहीं कर लेता, तब तक आत्मा के सही स्वरूप की कल्पना भी नहीं कर सकेगा। श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन, ये ज्ञान की जो बातें मैंने तुम्हें समझाई, ज्ञान की साधना के बारे में जो कुछ भी बताया, उसके विपरीत जो कुछ भी है, उसे अज्ञान कहते हैं।

मनुष्य में कोई गुण होता है। उसके कारण उसमें मान की भावना आ जाती है। इस मान की भावना के कारण वह दूसरों का तिरस्कार या उपेक्षा कर देता है। कोई गुण भगवान ने दिया और उस गुण से गुणवान बनकर मनुष्य में मान की भावना आ गई। मान की उस भावना को दूर करने को कहते हैं अमान। अमान वह स्थिति है, जब अपने गुणों के कारण दूसरों के प्रति हीन दृष्टि न दे। मेरे भीतर कोई गुण तो नहीं है, पर मैं उसे दिखाने का प्रयास करता हूँ। जो गुण है नहीं, उसको दिखाने का मैं प्रयास करूँ, तो उसे कहेंगे दम्भ। भगवान कहते हैं, साधना के द्वारा मनुष्य अदम्भित्व को प्राप्त होता है। इस साधना से ही ज्ञान प्राप्त होता है। साधना के ही द्वारा धीरे-धीरे चंचल मनोयन्त्र शान्त होगा। शान्त हो जाने पर आत्मा का प्रतिबिम्ब पूरा जाकर उस पर झलकेगा और तब ही अर्जुन तू उस श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करने का अधिकारी होगा और उसके द्वारा क्षेत्रज्ञ को समझ पाएगा।

(श्रीमद्भगवद्गीता का तेरहवाँ अध्याय समाप्त)

(क्रमशः)

साधुओं के पावन प्रसंग (७८)

स्वामी अशेषानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

शास्त्रों में साधु के लक्षण विस्तृत रूप से वर्णन किये गये हैं। श्रीमद्भागवत (११/११/२९-३१) में भगवान श्रीकृष्ण उद्धव को एक सच्चे संन्यासी के गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं :

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः।।
कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः।।
अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः।।

अर्थात् साधु कृपालु, अजातशत्रु, तितिक्षावान, सत्यवादी, पवित्र, सुख-दुख में समभाव, परोपकारी होता है। वह मुक्तकाम, जितेन्द्रिय, शान्त, समभाव, निर्मल, अकिञ्चन, अनासक्त, आहार-संयमी, विनम्र, स्थिर, भगवान का शरणागत होता है। वह सदैव जाग्रत, गम्भीरात्मा, धृतिमान, शक्तिमान, विनयी, दूसरों के प्रति श्रद्धाशील, कर्मदक्ष, सभी के प्रति मित्रभाव, करुणामय एवं विद्वान होता है। स्वामी अशेषानन्द जी महाराज के जीवन में इन सभी गुणों का न्यूनाधिक विकास हुआ था।

स्वामी अशेषानन्द (१८९९-१९९६) का पूर्वाश्रम का नाम किरणचन्द्र घोषाल था। १० जुलाई, १८९९ ई. को उनका जन्म फरीदपुर, बंगलादेश में हुआ था। वे सेन्ट पॉल कॉलेज, कोलकाता में दर्शन-विभाग के छात्र थे। उन्होंने अपनी छात्रावस्था में ही अपने मित्र स्वामी अखिलानन्द और स्वामी विविदिषानन्द जी के साथ स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज का दर्शन किया था।

१९१७ ई. में उद्बोधन में श्रीमाँ सारदा देवी से उनकी दीक्षा हुई। १९२१ ई. में वे रामकृष्ण संघ में सम्मिलित हुए। १९२१ ई. स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज जी से उनको ब्रह्मचर्य-दीक्षा मिली। तथा १९२३ ई. में स्वामी सारदानन्द जी महाराज ने उनको संन्यास दीक्षा दी। १९२१ से १९२७ ई. तक उन्होंने सारदानन्द जी महाराज के सचिव के रूप में कार्य किया। तत्पश्चात् सारदानन्द जी महाराज के शरीर-त्याग के बाद वे अद्वैत आश्रम, काशी तथा चेन्नई स्टूडेन्ट्स होम में सेवा दिए।

१९४७ ई. में स्वामी अशेषानन्द न्यूयार्क में स्वामी निखिलानन्द जी के सहयोगी होकर आये। तदुपरान्त उन्होंने बोस्टन तथा हॉलीवुड केन्द्र में सेवा किया तथा १९५५ ई. में वे वेदान्त सोसायटी, पोर्टलैंड, ओरेगन के अध्यक्ष हुए। १६ अक्तूबर, १९९६ ई. में उन्होंने अपना पंच-भौतिक शरीर त्याग दिया।

अमेरिका आने के बाद स्वामी अशेषानन्द जी पुनः कभी भारत वापस नहीं गये। हमलोगों ने कई बार उनसे कहा, "महाराज, आप एक बार मातृभूमि दर्शन करके आइये। हमलोग आपके यातायात का खर्च देंगे।" वे हँसते हुए कहते, "देखो भाई, स्वामी विवेकानन्द ने स्वामी तुरीयानन्द जी से कहा था, 'Forget India and work for the Mother.' अर्थात् भारत को भूल जाओ और माँ के लिए कार्य करो।' " अशेषानन्दजी ने स्वामीजी के इस वाक्य को दृढ़भाव से पकड़ लिया था। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन अमेरिकावासियों के बीच वेदान्त, श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा देवी तथा स्वामी विवेकानन्द के सन्देशों के प्रचार-प्रसार में व्यतीत किया।

स्वामी अशेषानन्द जी महाराज

स्वामी अशेषानन्द जी की बाहरी वेशभूषा विचित्र थी। पुराने फटे हुए वस्त्र, बिखरे केश और उनकी अस्त-व्यस्त दाढ़ी थी। वे अक्सर ओवरकोट तथा कान तक ढकी हुई टोपी पहनते थे। लेकिन उनकी आँखें उज्ज्वल तथा तेजोमय थीं, कण्ठस्वर गम्भीर था। वे पूर्ण आत्मविश्वास के साथ वार्तालाप करते तथा नवीन दृष्टिकोण प्रदान करते थे। एक व्याख्यान में उन्होंने एक बार कहा था, ''पश्चिमी विज्ञान ने परमाणु को विभाजित कर दिया है, जिससे सम्भावित विनाशक शक्ति मुक्त हो गई है, लेकिन श्रीरामकृष्ण (उनकी गहन साधना की शक्ति के माध्यम से) ने माया के परदे को चीर दिया है, जिससे आत्म-साक्षात्कार की महान शक्ति प्रकट हुई है। परमाणु शक्ति और शान्ति कभी साथ नहीं चल सकते। यदि आप शान्ति चाहते हैं, तो आपको भगवान मिलेंगे। त्याग निन्दास्पद नहीं है किन्तु यह दिव्यता है।''

एक दिन बेलूड़ मठ में प्रात:काल संन्यासीगण महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द जी) को प्रणाम करने गये। उनके कमरे में मेज पर एक फूलदानी में पीले रंग का गुलाब का पुष्प था। महापुरुष महाराज ने संन्यासियों को लक्ष्य करते हुए कहा, ''इस पुष्प को देखो। इस एक पुष्प ने अपने सौन्दर्य तथा सुगन्ध से इस कमरे के वातावरण को परिपूर्ण कर दिया। उसी प्रकार यदि आश्रम में एक सच्चा संन्यासी रहता है, तो वह सम्पूर्ण आश्रम में आध्यात्मिक परिवेश का निर्माण करता है तथा बहुत-से लोगों को आकर्षित करता है।'' जब मैंने १९७३ ई. में अप्रैल महीने में पहली बार स्वामी अशेषानन्द जी का दर्शन किया, तो मुझे उसी तरह का अनुभव हुआ। कई संन्यासी-संन्यासिनी तथा भक्त पोर्टलैण्ड आश्रम में उनसे आकर्षित होकर उनका दर्शन तथा उनका सत्संग करने के लिए जाते थे। उनका चरित्र निर्मल तथा सभी प्रकार के कलंक से मुक्त था। उनका जीवन त्याग-वैराग्यमण्डित तथा भक्ति से परिपूर्ण था। वे स्वाधीन-स्वभाव वाले, तेजस्वी तथा विद्वान थे। उनका हृदय स्नेह-प्रेम से परिपूर्ण था किन्तु वे कठोर अनुशासनप्रिय थे। वे अड्डा, निरर्थक बातें, परनिन्दा-परचर्चा सहन नहीं कर पाते थे। उनको पूजा करना बहुत पसन्द था। उनके जीवन में चार योग (भक्ति, ज्ञान, कर्म तथा योग) का अभूतपूर्व समन्वय हुआ था। उनमें बहुत सारे गुण थे, किन्तु वे समयनिष्ठ नहीं थे। यद्यपि आश्रम में पूजा तथा व्याख्यान का समय निर्दिष्ट था तथापि उसे आरम्भ करने में सदैव कुछ बिलम्ब हो जाता था। अमेरिकी भक्तगण इसके अभ्यस्त हो गये थे। ऐसा लगता है कि महाराज उनलोगों को सीखाना चाह रहे थे – You live in time but we live in eternity. अर्थात् तुमलोग समय में जीते हो, पर हम अनन्त में जीते हैं।

स्वामी अशेषानन्द जी आत्मनिर्भरशील संन्यासी थे। वे अपने कमरे तथा बाथरूम की सफाई स्वयं करते तथा अपना भोजन स्वयं बनाते थे। यहाँ तक कि वृद्धावस्था में भी पोर्टलैण्ड आश्रम का घास का मैदान मशीन से वे स्वयं काटते थे।

स्वामी अशेषानन्द जी को देखने से ऐसा लगता जैसे वे देवावेश में चल रहे हैं। उनके सामान्य व्यावहारिक कार्यों से भी उनका विशेष स्वभाव प्रकट होता था। वे बहुत गम्भीर थे तथा उसके साथ-साथ ही शिशु के जैसे सरल भी थे। कभी-कभी वे परिहास भी करते थे। ठाकुर के पार्षद आपस में किस प्रकार हास-परिहास करते थे, उसमें से एक घटना एकाधिक समय स्वामी अशेषानन्दजी महाराज के मुँह से सुनी थी। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३१८ का शेष भाग

हिल और आसपास के क्षेत्रों में शत्रु पक्ष से युद्ध करने का आदेश मिला। २८ जून, १९९९ को उन्हें थ्री पिम्पल्स, नॉल और लोन पहाड़ी क्षेत्र पर कब्जा करने के लिए अपनी पलटन का नेतृत्व करने का लक्ष्य दिया गया। उन्होंने नॉल पर विजय प्राप्त कर ली, लेकिन गोलीबारी में चोटिल होकर प्राण त्याग दिए।

आज भी कारगिल भारतीय सैनिकों के सामर्थ्य की गाथा से गूँज रहा है। कारगिल के दुर्गम भौगोलिक क्षेत्र में, कष्ट-बाधाओं में भी कर्तव्य-पालन करते हुए ५०० से अधिक वीर सैनिकों ने अपने प्राण न्यौछावर किए। वीर बलिदानियों की स्मृति में श्रीनगर-लेह राष्ट्रीय राजमार्ग पर द्रास में कारगिल युद्ध स्मारक निर्मित किया गया है। स्मारक से लौटते हुए लाल रंग की एक शिला है, जिसमें लिखा गया है – ''आपके कल के लिये हमने अपना आज बलिदान दिया है ... – भारतीय सेना'' ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. द ब्रेव - रचना बिष्ट रावत **२.** विजयन्त एट कारगिल – नेहा द्विवेदी, कर्नल वीएन थापर **३.** कारगिल फ्रॉम सरप्राइज टू विक्ट्री – जनरल वीपी मलिक

अलमोड़ा में विवेकानन्द द्वार का उद्घाटन

रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा के द्वारा उत्तरांचल में ६५ लाख रुपये का ऐतिहासिक **विवेकानन्द द्वार**-निर्माण कराया गया। यह द्वार राजमार्ग-१०९ अलमोड़ा में करबला जंक्शन पर अवस्थित है। इस नवनिर्मित 'विवेकानन्द द्वार' का उद्घाटन २२ मार्च, २०२५ को अपराह्न में उत्तराखण्ड के सम्माननीय मुख्यमन्त्री श्री पुष्कर सिंह धामी जी के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर केन्द्रीय राज्य परिवहन मन्त्री श्री अजय टामटा, अलमोड़ा नगर-निगम के अध्यक्ष श्री अजय वर्मा, रामकृष्ण मिशन आश्रम, देहरादून के सचिव स्वामी असीमात्मानन्द, रामकृष्ण मठ, ऋषिकेश के अध्यक्ष स्वामी कालीकेशानन्द, विवेकानन्द आश्रम, श्यामलाताल के सचिव स्वामी ज्ञाननिष्ठानन्द, अद्वैत आश्रम, मायावती के व्यवस्थापक स्वामी सुहृदानन्द जी उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त अन्य पूज्य सन्त-भक्तवृन्द, छात्र एवं स्थानीय अधिकारी उपस्थित थे।

इस द्वार के शिल्पकार तनिशा तिवारी, अलमोड़ा, संरचनात्मक अभियन्ता मनोज मेहरा, बागेश्वर, कान्ट्रेक्टर सृगार इन्फ्रा (दीपक पोखरिया), अलमोड़ा और मूर्तिकार निरंजन दे, सारगाछी, मुर्शीदाबाद हैं। विवेकानन्द द्वार के निर्माण में ६५ लाख रुपये व्यय हुये। रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा के अध्यक्ष स्वामी ध्रुवेशानन्द जी महाराज ने सभी समागत अतिथियों एवं इस पुनीत कार्य में सहयोगियों के प्रति आभार प्रकट किया।

रामकृष्ण मठ, पूर्णिया में सोल्लास पंच-दिवसीय वासन्तीय दुर्गापूजा ३ अप्रैल, २०२५ से ७ अप्रैल, २०२५ तक शास्त्रोक्त विधि-विधान से सम्पन्न हुई। १९३२ में अनवरत अनुष्ठित इस पूजा में सप्तमी, महाष्टमी व रामनवमी को कुल १८००० लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया तथा भक्तों के सुविधार्थ सम्पूर्ण पूजा का यूट्यूब पर सीधा प्रसारण किया गया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा द्वारा १२ से १८ जनवरी, २०२५ तक स्वामी अद्भुतानन्द जी महाराज की जन्म-तिथि पर भागवत कथा का आयोजन किया गया। कथाकार थे रामकृष्ण मठ, राजकोट के स्वामी गुणेशानन्द जी महाराज। आश्रम के सचिव स्वामी अतिदेवानन्द जी महाराज ने सभी श्रोताओं के प्रति आभार व्यक्त किया।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में ३ फरवरी, २०२५ को बसंत पंचमी उत्सव 'सरस्वती पूजा' का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में प्रात:काल माँ सरस्वती की प्रतिमा-पूजा विद्वान पंडितों द्वारा की गयी। छात्रों और शिक्षकों ने वेदपाठ और भजन गाये। १० बजे से एक गोष्ठी आयोजित हुई, जिसमें पूर्व अतिरिक्त मुख्य सचिव, छत्तीसगढ़ शासन एवं अरविन्द सोसाइटी, रायपुर की अध्यक्ष डॉ. इन्दिरा मिश्रा मुख्य अतिथि थीं। डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने माँ सरस्वती के स्वरूप पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम की अध्यक्षता स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने की।